कुरुक्षेत्र

मार्च 1994

तीन रुपये

प्रदूषण का बढ़ता संकट और गांव

पौधों की दुर्लभ प्रजातियों का संरक्षण

भारी मात्रा में वनों की कटाई, बढ़ते शहरीकरण और ऐसे ही कुछ अन्य कारणों से विश्व भर में कई महत्वपूर्ण पौधों की प्रजातियों को अस्तित्व का संकट सहना पड़ रहा है। इनमें कई पौधे दवाओं और सुगंध की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इनमें से अधिकांश जैव-विविधता की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध हैं। इस बहुमूल्य संसाधन को बचाए रखने का एक ही उपाय है कि इन प्रजातियों को संरक्षण किया जाये।

इस उद्देश्य के लिए 1990 में मलयेशिया की राजधानी कुआलालमपुर में विकासशील देशों के बीच विचार-विमर्श के तहत 15 देशों के समूह, जी-15 की बैठक में यह फैसला किया गया था कि इन देशों में दवाओं के लिए पौधों तथा जड़ी-बूटियों के संरक्षण के वास्ते "जीन बैंक" बनाए जाए। इस परियोजना को "जी-15 जीन बैंक फार मेडिसिनल एंड ऐरोमैटिक प्लांट" (जी-15 गैबमैप) का नाम दिया गया। इस परियोजना के अंतर्गत प्रत्येक देश में चलायी जा रही गतिविधियों में दवाओं में उपयोगी और सुरभियुक्त पौधों का संरक्षण, सर्वेक्षण और एकत्रीकरण, जीन बैंकों की स्थापना तथा एक राष्ट्रव्यापी आंकड़ा आधार विकसित करना शामिल है।

कुआलालमपुर सम्मेलन ने भारत को इस परियोजना के लिए समन्वयकर्ता और ब्राजील तथा मिस्र को क्षेत्रीय समन्वयकर्ता राष्ट्रों के रूप में चुना था। भारत को सौंपे गए दायित्वों में केंद्रीय स्तर पर खोज, एकत्रीकरण और जनन-द्रव्य संसाधनों का विनिमय शामिल है।

परियोजना के तहत भारत तीन राष्ट्रीय जीन बैंकों की स्थापना कर चुका है। ये बैंक, राष्ट्रीय पादप आनुवंशी संसाधन ब्यूरो, नई दिल्ली, सेन्ट्रल इन्स्टिट्यूट ऑफ मेडिसिनल एंड ऐरोमैटिक प्लांटस, लखनऊ और ट्रॉपिकल बोटनिकल गार्डन एंड रिसर्च इंस्टिट्यूट, त्रिवेन्द्रम में स्थित हैं। नई दिल्ली स्थित जीन बैंक उत्तरी और पूर्वोत्तर राज्यों के लिए है, जबकि लखनऊ केंद्र उत्तरी और उत्तर-पश्चिमी राज्यों की देखरेख करेगा। त्रिवेन्द्रम केंद्र प्रायद्वीपीय भारत के लिए है। ये जीन बैंक जी-15 के अन्य सदस्य राष्ट्रों के कर्मचारियों को प्रशिक्षण सुविधाएं भी मुहैया करायेंगे।

जी-15 के सभी देशों में बनाए गए जीन बैंक क्षेत्रीय और अंतर-क्षेत्रीय आधार पर नेटवर्क स्थापित करेंगे। इसके तीन क्षेत्रों की पहचान की गई है, ये हैं, अफ्रीका (अलजीरिया, मिस्र, नाइजीरिया, सेनेगल, जिम्बाब्वे), एशिया (भारत, इंडोनेशिया, मलयेशिया) और लेटिन अमरीका (अर्जेन्टीना, ब्राजील, जमैका, मैक्सिको, पेरू, वेनेजुएला)। ब्राजील, लेटिन अमरीका के लिए क्षेत्रीय समन्वयकर्ता और मिस्र तथा भारत क्रमशः अफ्रीका और एशिया के लिए क्षेत्रीय समन्वयकर्ता के रूप में काम करेंगे। भारत इस कार्यक्रम के लिए समग्र रूप से समन्वय स्थापित करेगा।

इन कार्यक्रमों पर उदाहरण के लिए जीन बैंकों की स्थापना के लिए बुनियादी ढांचा बनाने पर होने वाला खर्च राष्ट्रीय स्तर पर सम्बद्ध सदस्य देश द्वारा वहन किया जायेगा। क्षेत्रीय और जी-15 स्तर पर कार्यक्रमों के लिए धन बीज कोष के रूप में तैयार किये जाने वाले "ट्रस्ट फंड" से उपलब्ध कराया जायेगा, जो लगभग पांच लाख अमरीकी डालर का होगा। "ट्रस्ट फंड" के लिए प्रत्येक सदस्य देश को पचास हजार अमरीकी डालर का योगदान करना होगा। धन का इस्तेमाल नेटवर्क की स्थापना, प्रशिक्षण, प्रकाशन, वैज्ञानिक संगोष्ठियों का आयोजन आदि तथा अन्य साझी गतिविधियों के लिए किया जायेगा। अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों से भी सहायता की मांग की जायेगी।

"गैबमैप" द्वारा की गई अब तक की प्रगति से संकेत मिलता है कि जी-15 देशों में उपलब्ध जैव-विविधता के बारे में सूचनाएं एकत्र करने का काम जल्दी ही पूरा हो जायेगा। इससे जी-15 देशों में इस बहुमूल्य संसाधन के संरक्षण के लिए संयुक्त दृष्टिकोण तैयार करने और अपने लोगों के लाभ के लिए इनके स्थायी इस्तेमाल में भारी मदद मिलेगी।

साभार : पत्र सूचना कार्यालय

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय का प्रमुख मासिक

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। लघु कथाओं का भी स्वागत है। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है। 'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने व अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

वर्ष 39 अंक 5 फाल्गुन-चैत्र 1915-16, मार्च 1994

संपादक	:	राम बोध मिश्र
सह संपादक	:	बलदेव सिंह मदान
उप संपादक	:	ललिता जोशी

उप निदेशक (उत्पादन)	:	एस.एम. चहल
विज्ञापन प्रबंधक	:	बैजनाथ राजभर
व्यापार व्यवस्थापक	:	जॉन नाग
सहायक व्यापार		
व्यवस्थापक	:	एडवर्ड बैक
आवरण सज्जा	:	एम. एम. मलिक

एक प्रति : 3.00 रु० वार्षिक चंदा : 30 रु०

इस अंक में

गांवों में पर्यावरण-प्रदूषण का बढ़ता संकट : कारण और निदान 3
डा. देवनारायण महतो

पर्यावरण की स्वच्छता में बाधक बढ़ती आबादी 6
डा. (श्रीमती) सुनीता शर्मा एवं धनंजय शरण

सिमटती हरियाली, फैलते रेगिस्तान 9
विनोद कुमार एवं सुशीला कुमारी

हरितगृह प्रभाव और पर्यावरण 12
डा. गुलाब सिंह बघेल

फर्ज़ (कहानी) 15
शरद उपाध्याय

प्रदूषण का काला धुआं और मनुष्य 17
राजीव रंजन वर्मा

वायु प्रदूषण —कारण और निदान 19
डा. अधिकेश राय

जहरीले वातावरण में पनपता जीवन 23
डा. एम. के. राय

जरूरत है प्राकृतिक संसाधन रक्षा सेना की 26
विनय दीक्षित

वृक्षारोपण : आवश्यकता और फायदे 28
धनंजय कुमार मिश्र

कैलेन्डर की यात्रा-कथा 31
योगेश चन्द्र शर्मा

पर्यावरण प्रदूषण : दो चित्र (कविता) 33
राजेश हजेला

प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण 34
अरुण कुमार पाठक

बैगा आदिवासी और विकास योजनाएं 38
डा. वीरेन्द्र उनियाल

पर्यावरण पर अतिचारण के खतरे 42
कोशल किशोर चतुर्वेदी

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), ग्रामीण विकास मंत्रालय, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।
दूरभाष : 384888

पाठकों के विचार

महोदय मुझे 'कुरुक्षेत्र' का अक्टूबर अंक पढ़ने को मिला। यह अंक अत्यंत ही ज्ञानवर्द्धक तथा संग्रहणीय प्रतीत हुआ। विशेषकर आशारानी वोहरा का लेख 'जनसंख्या - समस्या पर समग्र दृष्टि से विचार जरूरी' अपने प्रस्तुतीकरण, सार-सामग्री एवं शैली की दृष्टि से अत्यंत ही सजीवता से ओत-प्रोत लगा। इसमें जिस प्रकार 'वार्तालाप' शैली में सामाजिक समस्या से जुड़े इस गूढ़ विषय को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, वह अत्यंत ही प्रशंसनीय है।

वैसे तो मैं अभी तक 'कुरुक्षेत्र' का नियमित पाठक नहीं था, लेकिन इस अंक के पढ़ने के बाद मैंने इस ज्ञानवर्द्धक पत्रिका का नियमित ग्राहक बनने का फैसला कर लिया है। आशा है कि आप लोग इसी तरह से अपने लेखों के माध्यम से हम जैसे प्रतियोगी छात्रों का मार्गदर्शन एवं ज्ञानवर्द्धन करते रहेंगे।

राकेश कुमार यादव,
एम. ए. अर्थशास्त्र,
(अंतिम वर्ष)
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद (उ. प्र.)

'कुरुक्षेत्र' का दिसंबर 1993 अंक मिला। बेरोजगारी के संबंध में प्रकाशित कई लेख पढ़े। आज वेतन भोगी बनने की प्रवृति रोजगार के क्षेत्र में बढ़ रही है, चूंकि यहां आय का निश्चित स्रोत है। दूसरी ओर कृषि और ग्रामोद्योग क्षेत्र में लोगों के रोजगार प्राप्त करने की प्रवृत्ति घट रही है। इसके कई कारण हैं : कृषि ऋण की सही समय पर अनुपलब्धता, आधुनिक कृषि तकनीक का अल्प विकास, सिंचाई साधनों का अल्प विकास, गांव की संकीर्ण राजनीति, ऊर्जा की समस्या एवं शिक्षा प्राप्त कर शारीरिक श्रम न करने की प्रवृत्ति इत्यादि।

इन क्षेत्रों में रोजगार के अवसर अधिक रहने के बावजूद उपरोक्त समस्याएं अनिश्चितता की स्थिति उत्पन्न करती हैं। इससे गांव से शहरों की ओर पलायन की प्रवृत्ति हमारे यहां बढ़ती जा रही है, कृषि तथा ग्रामोद्योग का अपेक्षित विकास नहीं हो पा रहा है तथा बेरोजगारी की समस्या यथावत बनी हुई है। इसलिए बेरोजगारी की समस्या के समुचित समाधान हेतु इन क्षेत्रों में अनिश्चितता की स्थिति को समाप्त करने की आवश्यकता है ताकि उत्पादन बढ़ने के साथ-साथ बेरोजगारी एवं अन्य समस्याओं का समाधान हो सके। इसके अलावा जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

श्री गौतम कुमार दास,
प्रोफेसर्स कालोनी,
पो. टी. विलासी टाउन
जि. बी. देवधर पिन - 814117 (बिहार)

भारत सरकार द्वारा ग्रामीण विकास की जितनी योजनाएं चल रही हैं, उसकी कार्यान्वियन विधि पर समुचित ध्यान केंद्रित करने की जरूरत है। सिर्फ सफलता की रिपोर्ट आ जाने से और कागज में कार्यान्वित करने के आदेश और राशि भर से, उसकी वास्तविक सफलता को नहीं आंकना चाहिए। सरकार के ग्रामीण उत्थान, जनजातीय चेतना, कुटीर उद्योग, गरीबी निवारक योजनाओं का योजनाकृत गांवों में पता तक नहीं हो पाता है और रिपोर्ट उक्त क्षेत्र में सफलता का ब्यौरा पेश करती है। ऐसी स्थिति में सरकार को व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है, योजनाओं के ग्रामीण कार्यान्वियन की संपुष्टि हेतु विभाग के चुने हुए ईमानदार, जागरूक, सजग और साहसी अधिकारियों का निरीक्षक दल गठित किया जाये जो निर्भीकता से योजनाओं के व्यावहारिक पक्ष की समुचित जांच कर सके। योजना क्षेत्र से संबंधित गांवों में किसी सार्वजनिक स्थल पर बड़े संरचनापट्टों में योजना का नाम, राशि, संबंधित अधिकारी के नाम को स्पष्ट अंकित किया जाये ताकि प्रबुद्ध और पढ़े-लिखे, ग्रामीण इसे पढ़कर प्रचारित कर सकें।

अजय सक्सेना
रामकृष्ण अपार्टमेंट-49,
प्लाट-10, सेकटर-9,
रोहिणी, दिल्ली-85

गांवों में पर्यावरण-प्रदूषण का बढ़ता संकट : कारण और निदान

डा. देवनारायण महतो

गांव हो या शहर आज सर्वत्र मानव की भोगवादी प्रवृत्ति एवं तीव्र विकास की लिप्सा ने जीवन और प्रकृति के बीच स्वाभाविक संबंधों के प्रति मानवीय दृष्टिकोण में बुनियादी परिवर्तन ला दिया है। जीवन और जगत के प्रति संवेदनशील प्रकृति आज मानव जाति के लिए संसाधन मात्र बन कर रह गयी है। विज्ञान की चाबी से मानव ने भौतिक समृद्धि निःसंदेह हासिल कर ली है, परन्तु उससे कहीं अधिक मात्रा में जलवायु और भूमि का प्रदूषण हुआ है, वनों का सर्वनाश हुआ है, जीव-जन्तु और वनस्पतियों की अनेक प्रजातियां लुप्त हुई हैं, धरती की कोख सूनी और क्षारीय हो गयी है तथा जल के स्रोत सूखते जा रहे हैं। ओजोन मंडल में छेद, बाढ़, सुखाड़, भूकंप या असाध्य रोगों जैसी प्राकृतिक आपदाओं से मानव रुबरू हो रहा है। जीवाश्म ईंधनों के जलने तथा परमाणु विस्फोटों के कारण क्रमशः पृथ्वी के तापमान में वृद्धि हो रही है और रेडियोधर्मिता फैल रही है। पर्यावरण प्रदूषण आज की सबसे विकट समस्या बन गयी है जिसने जीव जन्तु एवं वनस्पतियों को प्रभावित करने के साथ ही समस्त मानव जाति के अस्तित्व पर एक प्रश्न चिन्ह लगा दिया है।

हमारा भारत लगभग सात लाख गांवों का एक विशाल देश है। यहां की कुल आबादी के 70 प्रतिशत लोग गांवों में निवास करते हैं। गांव, जो कभी स्वच्छता, ताजगी और पवित्रता की उर्वर भूमि थे, जहां भोले-भाले किसान प्रकृति की गोद में बैठकर अपने श्रमजल से शुद्ध अन्न के दाने पैदा करते थे, माटी की कोख से निकली सोंधी-सोंधी गंध, खेतों में लहलहाते पौधे, नदियों का कलकल बहता निर्मल जल, शीतल पवन के झोंके, हरे-भरे बाग-बगीचे तथा कलरव करते पंछी शरीर ही नहीं, मन प्राणों की पीड़ा भी हर लेते थे, आज पर्यावरण प्रदूषण के बढ़ते संकटों का सर्वाधिक शिकार होकर अपनी स्वच्छ और स्वस्थ छवि खोता जा रहा है। हमारे गांवों और शहरों में आज अधिकांश लोग किसी न किसी बीमारी से ग्रसित हैं तो इसका मुख्य कारण जल, वायु और धरती में घुलता हुआ जहर है जो जाने-अनजाने हमारी सांसों में और खून के कतरों में समाता जा रहा है। इस संदर्भ में हमारे गांवों की दशा अत्यन्त चिन्तनीय है। वहां लोग अशिक्षा, अज्ञानता, अन्धविश्वास एवं स्वच्छता के प्रति दायित्व बोध की कमी के कारण न केवल पर्यावरण संरक्षण के प्रति उदासीन हैं, बल्कि प्रदूषण बढ़ाने में भी मददगार सिद्ध हो रहे हैं।

ग्रामीण पर्यावरण प्रदूषण के उत्तरदायी कारक

वैसे तो पर्यावरण प्रदूषण के लिए कारखाने मोटर-गाड़ियां, जीवाश्म ईंधनों का प्रदहन, परमाणु विस्फोट इत्यादि मुख्य रूप से उत्तरदायी हैं, किन्तु कुछ अन्य कारक भी हैं जो ग्रामीण क्षेत्रों में प्रदूषण तो बढ़ाते ही हैं साथ ही साथ सफाई व्यवस्था एवं पर्यावरण संरक्षण के कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने में कठिनाईयां पैदा करते हैं। इनमें से कुछ प्रमुख कारक और उनका समाधान इस प्रकार हैः

(1) अशिक्षा एवं सामूहिक स्वच्छता के दायित्व बोध की कमीः ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की अज्ञानता एवं निरक्षरता पर्यावरण प्रदूषण का प्रबल कारण है। सारी दुनिया में पर्यावरण संरक्षण पर चर्चा हो रही है जबकि हमारे ग्रामीण भाई आज भी पर्यावरण शब्द के अर्थ से परिचित नहीं हैं। गांव में अगर थोड़ी बहुत निजी स्वच्छता की बात मान ली जाए तो सामूहिक स्वच्छता बनाये रखने के दायित्व बोध का उनमें सर्वथा अभाव देखा जा सकता है। परिणामतः जलवायु, पेड़-पौधे और पृथ्वी, जो मानव जीवन के आधार स्तंभ हैं, को कैसे स्वच्छ रखा जाए, इसकी समझ तक लोगों में नहीं हो पायी है।

इस समस्या के व्यावहारिक सामाधान हेतु शिक्षा एवं साक्षरता को जन अभियान बनाना होगा। सामाजिक एवं स्वैच्छिक संगठनों के सहयोग से ग्रामीण भाइयों को पर्यावरण संरक्षण की जानकारी दी जा सकती है। हवा, जल, धरती एवं वृक्षों के महत्व को बता कर इनके शुद्धीकरण एवं रख रखाव के प्रति संवेदना जगायी जा सकती है। प्रारंभिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में साफ-सफाई एवं पर्यावरण विषय को शामिल करके ग्रामीण बच्चों को इसकी जानकारी देनी होगी। सफाई के सामूहिक दायित्व के प्रति प्रशिक्षण शिविर लगाकर पढ़े-लिखे छात्रों एवं नौजवानों द्वारा ग्रामीणों में सामूहिक सफाई के प्रति दायित्व बोध पैदा किया जा सकता है।

(2) जनसंख्या विस्फोटः ग्रामीण क्षेत्रों में अशिक्षा के कारण जनसंख्या बेतहाशा बढ़ रही है। इसका प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण पर भी पड़ता है। इससे रहन-सहन का स्तर निम्न होता

जाता है और बढ़ी हुई आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वन क्षेत्र को काट कर उपज लायक बनाया जाता है। जनसंख्या विस्फोट पर नियंत्रण हेतु तीव्रगामी कदम उठाने की आवश्यकता है। दूर दराज के गांवों और बस्तियों में लोगों को छोटे-परिवार के महत्व को समझाकर, पुरस्कार एवं प्रोत्साहन योजना चला कर एवं परिवार नियोजन की सुविधा को घर के दरवाजे तक पहुंचा कर इस समस्या पर काबू पाने में सहायता मिल सकती है। इससे न केवल पर्यावरण संरक्षण को बल मिलेगा बल्कि राष्ट्रीय विकास को भी नयी दिशा मिलेगी।

(3) सामाजिक और धार्मिक मान्यताएं: भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक प्रकार की सामजिक एवं धार्मिक मान्यताएं भी पर्यावरण प्रदूषण को बढ़ाने में सहायक होती हैं। नदी एवं जलाशयों में दूध का चढ़ावा चढ़ाना, देवी-देवताओं के नाम पर नदियों के किनारे एवं अंन्य स्थान पर पशु-पक्षियों की बलि चढ़ाकर प्रदूषण फैलाना आम बात है। अधजले शव को या उसके भाग को नदियों में बहाने की प्रथा जल प्रदूषण के लिए काफी हद तक उत्तरदायी है।

इस समस्या का निदान थोड़ा कठिन जरूर है किन्तु असंभव नहीं। सामाजिक, धार्मिक मान्यताएं अन्ध विश्वास पर आधारित हैं। इसके लिए लोगों में जन चेतना एवं संकल्प के माध्यम से जागृति पैदा करनी पड़ेगी जिससे वे अन्धविश्वास से निकलकर जल, भूमि एवं वायु को प्रदूषित करने वाली मान्यताओं का परित्याग कर सकें।

(4) निर्धनता एंव निम्न जीवन स्तर : यह सही है कि स्वच्छ जीवन के लिए पर्याप्त साधन चाहिए। ग्रामीण क्षेत्र में अधिकांश लोग निर्धन हैं जिनका जीवन स्तर काफी निम्न होता है। दो जून की रोटी और रैन बसेरे की आपाधापी में जिन्दगी तमाम हो जाती है तथा स्वच्छ और स्वस्थ जीवन की चाहत फलीभूत होने से पहले ही गुम हो जाती है। परिणामतः गांव के गरीब लोग स्वच्छता और सफाई के संबंध में सोच भी नहीं पाते और उनकी इसी लाचारी से पर्यावरण कई तरह से दूषित होता है।

गांव के लोगों को पर्यावरण के प्रति जागरूक बनाने के लिए एवं स्वच्छ जीवन के लिए गरीबी से छुटकारा दिलाना नितान्त आवश्यक है। इसके लिए आर्थिक विकास एवं गरीबी उन्मूलन के कार्यक्रमों को अपनाते समय हमें अपने देशवासियों की जीवन शैली में स्वच्छता को प्राथमिकता देनी होगी। सुलभ शौचालयों एवं शुद्ध पेयजल की व्यवस्था से उन्हें सीधा जोड़ना होगा। उनकी आय बढ़ाने हेतु ग्रामोद्योग एवं लघु कुटीर उद्योग को पुनः स्थापित करना होगा।

(5) खुले स्थान में शौच की प्रथा : गांवों में आज भी प्रायः सर्वत्र खुली जगह में शौच करने की प्रथा प्रचलित है। गांव के प्रवेश एवं निकास स्थान पर, जलाशयों एवं नदियों के किनारे तथा घर के आस-पास लोग मल-मूत्र का परित्याग कर देते हैं। इससे गंदगी हवा और वर्षा के साथ जल स्रोतों में मिल जाती है। मक्खियां मल-मूत्र पर बैठ कर अपने साथ रोग के किटाणु लेकर फल, सब्जी, और अन्य खाने की वस्तुओं पर बैठती हैं जिससे ग्रामीण पर्यावरण तेजी से दूषित होता है।

इस समस्या के समाधान के लिए सरकार को सुलभ इन्टरनेशनल एवं अन्य स्वयंसेवी संगठनों को प्रोत्साहित करके बड़े पैमाने पर प्रत्येक गांव में सार्वजनिक शौचालयों का निर्माण करवाना चाहिए। आज हमारे देश में 90 प्रतिशत आबादी को शौचालय उपलब्ध नहीं हैं। हालांकि सरकार ने सातवीं योजना में 275 करोड़ रुपये की तुलना में आठवीं योजना में सफाई व्यवस्था हेतु 675 करोड़ रुपयों का प्रावधान किया है। लेकिन इससे मात्र 25 प्रतिशत परिवारों को ही सफाई सुविधा उपलब्ध हो सकेगी। स्पष्ट है कि यह कार्य केवल सरकार के बूते का नहीं है। अतः इसे व्यावहारिक बनाने हेतु लोगों को स्वयं अपने घरों में सुलभ शौचालय बनाने हेतु प्रेरित किया जाना चाहिए। गरीब लोगों को स्वयं गड्ढा खोद कर ऊपर से लकड़ी डाल कर सस्ता शौचालय बनाने की विधि बतलायी जानी चाहिए। पर्यावरण संरक्षण हेतु यह काफी महत्वपूर्ण मुद्दा है। इसे गांव और शहरों में जन-जन तक पहुंचाने हेतु सामुदायिक विकास कार्यक्रमों का हिस्सा बनाया जाना चाहिए।

(6) वनों एवं बाग बगीचों की कटाई : गांवों में भी लोग पैसे के लालच में तथा अपनी बढ़ती आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु बाग बगीचे काटते हैं। खनन उद्योगों से बड़े पैमाने पर वनों का सर्वनाश हो रहा है जिससे आस-पास के गांवों में धूल और धुएं का साम्राज्य हो जाता है। प्रतिवर्ष वृक्षारोपण आदि के बाद भी लगभग दस लाख हेक्टेयर जमीन में जंगल कम हो गए हैं। इसके परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर जल स्रोत सूखते जा रहे हैं। अकाल और दुर्भिक्ष का सामना करना पड़ रहा है। भूमि का क्षरण हो रहा है, वनस्पतियों की प्रजातियां एवं वन्य-जीव विलुप्त हो रहे हैं। इस प्रकार वृक्षों के सर्वनाश से पर्यावरण संतुलन लगातार बिगड़ता जा रहा है।

इस समस्या के समाधान के लिए योजनाबद्ध तरीकों से नये वनों का विकास करना होगा। इसके लिए प्राकृतिक मिश्रित वनों के सिद्धान्त पर अमल होना चाहिए न कि पैसे की लालच में एक

प्रजाति के अधिक नमी सोखने वाले वनों पर। किसान भाइयों में वनों के प्रति जागृति पैदा करने के लिए मानव जीवन में वृक्षों की भूमिका से उन्हें परिचित कराना होगा। उन्हें बतलाना होगा कि वृक्ष हमारा साथी है, रक्षक है, आबोहवा को शुद्ध करता है, समुचित वर्षा में सहायक होता है, मिट्टी के क्षरण को रोकता है तथा धरती के तापमान को नियंत्रित करता है। आवश्यकतानुसार समय पर वृक्षों की कटाई होनी चाहिए और उसके एवज़ में काटे गये वनों से दो-तीन गुणा अधिक वन लगाये जाने चाहिए।

(7) जल स्रोतों का भयंकर प्रदूषण : आज भारत के अनेक गांवों में शुद्ध पेय जल का भयंकर अभाव है। लोग अधिकांशः कच्चे कुएं एवं जलाशयों के पानी का उपयोग करते हैं। वे अक्सर तालाब एवं पोखरों में स्नान भी करते हैं, कपड़े भी धोते हैं, मवेशी को नहलाते हैं, शौच के बाद निवृत भी होते हैं और उसी स्रोत का जल भी पीते हैं। इससे जल प्रदूषण बढ़ता है और लोग अनेक बीमारियों से ग्रस्त हो जाते हैं।

इस समस्या के निराकरण के लिए गांवों में जल स्रोतों के रख-रखाव के संबंध में ब्लॉक एवं पंचायत स्तर पर प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाया जाना चाहिए। शुद्ध पेय जल की आपूर्ति सरकार द्वारा ट्यूबवेल लगाकर की जा सकती है।

(8) अन्य कारक : उपरोक्त कारकों के अतिरिक्त गोबर एवं कचरों के ढेर से भरी नालियां, रासायनिक खादों का अनुचित प्रयोग, फूल-फल एवं सब्जियों पर कीटनाशकों के असुरक्षित प्रयोग से भी ग्रामीण पर्यावरण दूषित होता है।

इन समस्याओं के समाधान के लिए ग्रामीण भाइयों को गोबर एवं कचड़ों को गड्ढा खोदकर कम्पोस्ट बनाने के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। उन्हें बतलाया जाना चाहिए कि रसायनों एवं कीटनाशकों का कम प्रयोग करें, घर के आस-पास जल जमा न होने दें तथा दूषित नाले के जल को सब्जियों के सींचने एवं खेतों में सोखता बनाकर दूषित होने से बचाया जाये। भोजन सामग्रियों को हमेशा ढक कर रखने के लिए लोगों को समझाया जा सकता है। इससे हैंजा, टायफायड, अतिसार और डायरिया के रोगाणु नहीं फैलेंगे।

ग्रामीण क्षेत्रों में दूषित हो रहे पर्यावरण के उत्तरदायी कारणों और उनके समाधान पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पर्यावरण प्रदूषण एक बहु-आयामी और सार्वभौमिक समस्या बन गई है जिसके निदान हेतु पर्यावरण संरक्षण कार्यक्रमों की मुख्य धारा से हर व्यक्ति को जोड़ना होगा। हर गांव और शहर में युवकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, छात्र-छात्राओं आदि के ऐसे जत्थे प्राथमिकता के आधार पर बनाये जाएं जो यह संदेश जन-जन तक फैला सकें कि हवा, जल और धरती, पेड़-पौधे और जन्तु मानवीय अस्तित्व एवं स्वस्थ जीवन के लिए परम आवश्यक हैं। ग्रामीण पर्यावरण के संदर्भ में सन् 1914 में महात्मा गांधी द्वारा व्यक्त की गयी गहरी संवेदना स्मरणीय है, जो आज की परिस्थिति में भी बिल्कुल प्रासंगिक है—"श्रम और समझ के बीच अलगाव की एक खाई बन गई है और इसलिए गांवों की घोर उपेक्षा का गुनाह हो रहा है। इसलिए हमारी ग्रामीण भूमि में सुन्दर और आकर्षक कुटीरों की कतार की बजाए कूड़े और गोबर के ढेर दिखाई देते हैं। आज गांवों की ओर जाएं तो एक आनन्ददायक और तरोताजा करने वाली अनुभूति नहीं होती बल्कि ज्यादातर गांवों में पहुंचते ही चारों तरफ इतनी गंदगी और बदबू मिलती है कि हमें आंखें और नाक बन्द करने की इच्छा होती है। हम भारतवासियों में सामाजिक स्वच्छता का गुण नहीं है। हम लोग अपनी सफाई के लिए स्नान करते हैं परन्तु कुंए, नदी या तालाब में या आस-पास गंदगी फैलाने में कोई संकोच नहीं करते। मेरी राय में यह एक बहुत बड़ा राष्ट्रीय एवं सामाजिक दुर्गुण है। इसी दुर्गुण के कारण हमारे गांवों की और हमारी पवित्र नदियों की हालत इतनी बदतर हो गयी है कि आज वे अस्वस्थता के कारण रोगों के स्रोत बन गई हैं।" ग्रामीण पर्यावरण संकट के सम्बन्ध में आज भी गांधी जी के उपरोक्त संवेदना संदेश हमारे लिए यथार्थ बोध और अन्तरात्मा की आवाज बनकर मार्गदर्शन कर रहे हैं।

द्वारा श्री इन्द्रदेव प्रसाद (ए० ई०)
सरिसताबाद रोड,
न्यूयार, पटना - 800001

पर्यावरण की स्वच्छता में बाधक बढ़ती आबादी

डा. (श्रीमती) सुनीता शर्मा एवं धनंजय शरण

हम सब जानते हैं कि धरती पर जीवन प्राकृतिक सन्तुलन से ही सम्भव है। हम सबको सांस लेने के लिए स्वच्छ वायु, पीने के लिए स्वच्छ जल तथा खेती के लिए उपजाऊ मिट्टी की आवश्यकता होती है लेकिन पर्यावरण प्रदूषण से प्राकृतिक असन्तुलन बढ़ता जा रहा है और मौसम में परिवर्तन आ रहे हैं। उचित समय पर पर्याप्त मात्रा में वर्षा नहीं हो रही है। कभी कम और कभी अधिक वर्षा होने से सूखा पड़ जाता है या फिर बाढ़ आती है। पर्यावरण प्रदूषण के कारण ही मानसिक तनाव, त्वचा, हृदय और फेफड़ों की बीमारियां निरन्तर बढ़ती जा रही हैं। इनसे समस्त जन-समुदाय परेशान है। पर्यावरण प्रदूषण का अभिप्राय जल, वायु और भूमि में आवांच्छित और हानिकारक तत्वों अथवा घटकों की विद्यमानता से है। ये तत्व प्रदूषक कहलाते हैं।

पर्यावरण की स्वच्छता मानव सहित समस्त जीव जन्तुओं के लिए अनिवार्य है जिसे बनाये रखने में मानव समुदाय का विशेष महत्व है परन्तु आवश्यकता से अधिक आबादी और आबादी के तेजी से बढ़ने पर मनुष्य ही प्रदूषक बन जाता है और अपनी आवश्यकताओं को संतुष्ट करते समय वातावरण को प्रदूषित करने लगता है जिससे मौसम में बदलाव आते हैं। सर्दियों में अत्यधिक ठन्ड पड़ती है, वर्षा ऋतु में अनियन्त्रित वर्षा होती है, तूफान आते हैं या फिर सूखा पड़ जाता है। ग्रीष्म काल में भीषण गर्मी पड़ने से तापमान बहुत बढ़ जाता है और वायुमण्डल में उष्मा की मात्रा आवश्यकता से अधिक हो जाती है। बहुत अधिक उष्मा हमारे काम करने की क्षमता को कम कर देती है और मनुष्यों, जानवरों तथा पेड़ पौधों पर बुरा प्रभाव डालती है।

वर्तमान शताब्दी में हमारा देश जनसंख्या विस्फोट के कठिन दौर से गुजर रहा है। 1901 की जनगणना में हमारे देश की आबादी लगभग 23.8 करोड़ थी जो कि 1951 तक बढ़कर लगभग 36.1 करोड़ हो गयी। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के प्रथम पचास वर्षों में आबादी के आकार में 12.3 करोड़ की वृद्धि हो गई और सबसे अधिक महत्वपूर्ण वृद्धि 1981-91 के दशक में हुई यह वृद्धि 16.01 करोड़ है जो कि इस शताब्दी के प्रथम पचास वर्षों की जनसंख्या वृद्धि से भी 3.71 करोड़ अधिक है। यह अनियन्त्रित रूप से बढ़ती हुई आबादी पर्यावरण की स्वच्छता की दृष्टि से बहुत दुखदायी है। इस जनसंख्या वृद्धि का मुख्य कारण यह है कि वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ अनेक जानलेवा बीमारियों का इलाज सम्भव हो गया है इससे मृत्यु दर में कमी आयी है, परन्तु धार्मिक अंधविश्वासों, अशिक्षा और रूढ़ियों के कारण जन्म दर में कोई खास कमी नहीं हुई है। ऐसा अनुमान है कि देश में प्रत्येक डेढ़ सेकिन्ड में एक शिशु जन्म लेता है, एक दिन में लगभग 55 हजार और एक वर्ष में लगभग 2 करोड़ 10 लाख शिशु जन्म लेते हैं। प्रति वर्ष लगभग 80 लाख लोगों की मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार हर वर्ष जनसंख्या में लगभग एक करोड़ 30 लाख की वृद्धि हो जाती है। जनसंख्या की अधिकता का अनुमान इस तथ्य से भी लगाया जा सकता है कि भारत के पास सम्पूर्ण विश्व का लगभग 2.4 प्रतिशत क्षेत्रफल है और आबादी सम्पूर्ण विश्व की आबाद की 16 प्रतिशत है। तेजी से बढ़ती हुई आबादी को खाने के लिए बढ़ती हुई मात्रा में अन्न, सब्जी और फल आदि की आवश्यकता होती है। लोगों के रहने के लिए मकान, पहनने के लिए कपड़े और अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेकों प्रकार का साज सामान भी चाहिए। इसीलिए बड़े पैमाने पर जंगलों को काटा जा रहा है जबकि वनों से अनेक प्रत्यक्ष और परोक्ष लाभों के अतिरिक्त पर्यावरण को स्वच्छ रखने में महत्वपूर्ण योगदान मिलता है। इन्हीं से जल मिलता है और जल से जीवन चलता है। जमीन को खेती करने, मकान बनाने, उद्योग लगाने, सड़कें, बनाने और रेल की पटरियां बिछाने आदि के लिए उपयोग में लाया जा रहा है। सिंचाई और बिजली पैदा करने के लिए बनाये गये बांधों के कारण बड़े-बड़े जंगल जलमग्न हो गये हैं।हमारे बहुत से कल कारखाने कच्चे माल के लिए जंगलों पर ही आश्रित हैं। अतः पिछले पचास वर्षों में जिस रफ्तार से जंगलों का सफाया हुआ है वैसा कभी नहीं हुआ। औद्योगिकरण ने पेड़ काटने की गति को खूब बढ़ावा दिया है और कटे पेड़ों की जगह नये पेड़ लगाने का काम नहीं हुआ है।

वास्तव में प्राकृतिक सन्तुलन को बनाये रखने और प्रदूषण को बढ़ने से रोकने के लिए कुल भूभाग के एक तिहाई भाग पर वनों का होना आवश्यक माना गया है।इस तथ्य को ध्यान में रखकर भारत सरकार द्वारा बनाई गयी वन नीति 1952 के अनुसार देश के कुल क्षेत्रफल के 33 प्रतिशत भाग पर वृक्षारोपण का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। देश में विद्यमान प्रत्येक प्रकार की भूमि का सर्वोत्तम उपयोग करने और भूमि क्षरण रोकने के उद्देश्य से पर्वतीय क्षेत्र के 60 प्रतिशत तथा मैदानी क्षेत्र के 20 प्रतिशत भाग को वनाच्छादित बनाना था, परन्तु आज तक देश में कुल क्षेत्रफल के लगभग 22 प्रतिशत भाग पर ही वनक्षेत्र हैं। देश के विभिन्न भागों में वनों की विद्यमानता में काफी अन्तर है। राजस्थान सहित कई राज्यों में वन क्षेत्रफल, कुल क्षेत्रफल का 9 प्रतिशत से भी कम है जबकि इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब कभी और जहां कहीं वन क्षेत्र सम्पूर्ण क्षेत्रफल के 10 प्रतिशत से कम हुआ है यहां तूफान, बाढ़, सूखा और अकाल जैसे प्राकृतिक प्रकोप बढ़े हैं तथा विनाश हुआ है। अतः जीवन अस्तित्व बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि सभी राज्यों में वनों की सघनता को बनाये रखने और प्राकृतिक आपदाओं को रोकने के उद्देश्य से कुल क्षेत्रफल के 33 प्रतिशत भाग में वनों को विकसित किए जाने के सम्पूर्ण प्रयास किए जाने चाहिए। यदि समय रहते हम न जागे और वनों के विनाश की कहानी इसी प्रकार अनवरत रूप से चलती रही तो हो सकता है कि एक दिन हमारे पास खाने के लिए अन्न तो हो परन्तु पकाने के लिए ईंधन नहीं होगा। सांस लेने के लिए आक्सीजन नहीं मिल पायेगी और पीने के लिए पानी भी नहीं होगा।

वर्तमान में तेजी से बढ़ती हुई आबादी के कारण खाद्य पदार्थों की मांग में बहुत तेजी से वृद्धि हो रही है। इसके लिए कृषि में उत्पादकता बढ़ाने के लिए युद्ध स्तर पर प्रयास किये जा रहे हैं। खेतों में भारी मात्रा में रासायनिक खादों का प्रयोग किया जा रहा है। पौधों को हानिकारक कीटों और बीमारियों से बचाने के लिए जहरीली दवाओं का प्रयोग किया जा रहा है। इससे कृषि उत्पादकता में तो वृद्धि हुई है लेकिन कृषिगत उपजों की गुणवत्ता में कमी आ रही है और मिट्टी भी प्रदूषित होती जा रही है। अनाज के गोदामों में प्रयोग किये जाने वाले गैमेक्सीन व डी. डी. टी. पाउडर तथा सल्फाज की गोलियां आदि भी प्रदूषण फैलाने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

बढ़ती हुई जनसंख्या स्वयं भी कम गन्दगी नहीं फैलाती है। आज बड़े-बड़े नगर बस रहे हैं जिनमें मल मूत्र निकासी के लिए बड़े-बड़े नाले बनाये गये हैं, जो अन्ततः नदियों में गिरते हैं। कूड़ा-कचरा व अन्य प्रकार की गन्दगी भी जहां तहां फेंक दी जाती है और सड़ती रहती है। इस गन्दगी को अन्त में नदियों या जलाशयों में ही शरण मिलती है। इससे हवा और पानी दोनों ही प्रदूषित हो रहे हैं। बड़े-बड़े कारखाने अन्धा धुन्ध धुआ उगल रहे हैं। कारखानों से लगातार निकलने वाले कचरे को भी जलाशयों में प्रवाहित किया जा रहा है। कहीं-कहीं खुली भूमि पर कचरे डाले जाते हैं। इन कचरों में कई तरह के जहरीले रसायन होते हैं जो हवा, पानी और भूमि को दूषित कर देते हैं।

सड़कों और रेल की पटरियों के दोनों ओर लगे पेड़ पौधे प्रदूषण के कारण ही कमजोर और रोग ग्रस्त हो गये हैं। वे धूल, धूसरित, मटमैले और काले दिखाई पड़ते हैं। यही नहीं अधिक जनसंख्या के कारण परिवहन की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सड़कों पर दौड़ते वाहन वातावरण को प्रदूषित करते हैं। इनसे ध्वनि तथा रासायनिक दो प्रकार का प्रदूषण बढ़ रहा है जिससे आने वाले समय के मनुष्यों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की सम्भावनायें प्रबल होती जा रही हैं। इसके साथ ही जीव-जन्तुओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

विशेषज्ञों का अनुमान है कि यदि वातावरण में प्रदूषण इसी तरह बढ़ता रहा तो बीस वर्ष बाद देश में बहरों की संख्या 50 प्रतिशत हो जायेगी। विषैले धुएं एवं गैसों से मनुष्यों को फेफड़ों की बीमारियां लग जायेंगी और जीवित मानव को मृतक के समान बना देंगी।

बढ़ती आबादी की बढ़ती हुई परिवहन सुविधाओं को पूर्ति के लिए खनिज तेल की मांग में भी तेजी से वृद्धि होती जा रही है जिसकी पूर्ति घरेलू उत्पादन तथा खाड़ी देशों से खनिज तेल का आयात करके की जाती है। तेल पोतों की आवाजाही बढ़ने, तेल गिरने और पाइप लाइनों से तेल रिसने के कारण देश के तटीय क्षेत्रों में प्रदूषण तेजी से बढ़ रहा है। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की रिपोर्ट के अनुसार समुद्र में तेल की खोज, दोहन तथा तेल वाहक पोतों के तेजी से आवागमन के कारण तटीय क्षेत्रों के प्रदूषण में इन क्रियाओं का योगदान भी बढ़ रहा है। रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि समुद्र में विषैले पदार्थों को डालने, नगरों तथा उद्योगों के कचरे को समुद्र में फेंकने और बिना सोचे समझे अनुपयोगी सामग्री को समुद्र में डालने के कारण समुद्र का पानी

मुख्य रूप से प्रदूषित होता है। हाइड्रोकार्बन और कीट नाशकों के समुद्र तक पहुंच जाने से समस्या और भी गम्भीर हो जाती है। देश की कुल आबादी का लगभग 25 प्रतिशत भाग तटीय क्षेत्रों में रहता है और मछली पकड़ने या अन्य सामूद्रिक गतिविधियों से अपनी आजीविका चलाता है। तटीय प्रदूषण से इस आबादी की क्रियाओं, स्वास्थ्य एवम् रहन सहन के स्तर पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। भारत की 14 बड़ी, 44 मध्यम और 55 छोटी नदियां आकर समुद्र में मिलती हैं। इनके माध्यम से भी काफी मात्रा में प्रदूषित सामग्री समुद्र में पहुंच जाती है। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने जल प्रदूषण पर प्रभावी नियंत्रण हेतु व्यावहारिक कदम उठाने की सिफारिश की है। देश के सबसे बड़े चार महानगरों में से तीन समुद्र तट पर स्थित हैं। इन महानगरों की आबादी बढ़ती जा रही है और इन क्षेत्रों में बड़े उद्योगों की संख्या से प्रदूषण की समस्या और भी गम्भीर होती जा रही है। अतः यदि जल और पृथ्वी के संयत स्थलों पर विद्यमान संसाधनों की दीर्घकाल तक प्रयोग करना है तो तटीय जल के जैविक और रासायनिक चरित्र तथा प्रकृति के विवेकहीन दोहन के आशय को समझने की आवश्यकता है। इसके लिए विवेकशील और सीमित जनसंख्या का होना ही एक मात्र कारगर उपाय हो सकता है।

वायुमण्डल में परिवर्तन के कारण मौसम में बदलाव आ रहे हैं और धरती की परिस्थितियां बदतर हो रही हैं। यदि यही क्रम आगे चलता रहा तो यह भी सम्भव है कि वातावरण का औसत तापमान 1.5 सें. से 4.5 सें. तक बढ़ जायेगा और ग्रीन हाउस प्रभाव के कारण ध्रुवों पर जमी बर्फ पिघल जायेगी और हमारी धरती जल मग्न हो जायेगी। परिणामस्वरूप यह भी हो सकता है कि ध्रुव प्रदेश हमारे रहने योग्य स्थान बन जायें और जहां आज आबादी है वह समुद्र के गर्भ में समा जाये। आधुनिक युग में पूरे विश्व में आबादी बढ़ने के कारण, भूमि, वायु, ध्वनि और जल सभी प्रकार के प्रदूषण इतनी तेजी से बढ़ रहे हैं कि भविष्य में इनके बढ़ते हुए दुष्प्रभावों का अनुमान लगाना कठिन काम है, परन्तु सभी जीवधारियों के लिए शुद्ध प्राण वायु की आवश्यकता होती है। यदि प्राण वायु दूषित हो जाये तो जीवधारियों के जीने के लाले पड़ जायेंगे। वायु के बाद दूसरी आवश्यकता निर्मल जल की है। आजकल मानव मात्र को भी पीने के लिए शुद्ध पानी नहीं मिल पाता है।

मौसम में बदलाव और भीषण बीमारियों को फैलने से रोकने के उद्देश्य से की गयी वैज्ञानिक खोजों से पता चला है कि पर्यावरण की स्वच्छता ही इनका एक मात्र हल है। अतः पर्यावरण प्रदूषण को रोकने और पर्यावरण की स्वच्छता बनाये रखने के लिए जनसंख्या परिसीमन आवश्यक और अनिवार्य हो जाता है। बढ़ती हुई आबादी पर अंकुश लगाकर ही हम भूमि, जल, वायु और ध्वनि सभी प्रकार के प्रदूषणों को बढ़ने से रोक सकते हैं। प्राकृतिक सन्तुलन बनाये रखने के लिए हम अपनी जनसंख्या को क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व की औसत जनसंख्या के बराबर लाकर स्वच्छता का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।

प्रसिद्ध इंगलिश अर्थशास्त्री एवम् जनसंख्याविद प्रो. माल्थस ने भी जनसंख्या वृद्धि सम्बन्धी अपने विश्लेषण में यह निष्कर्ष निकाला है कि आबादी गुणोत्तर क्रम में बढ़ती है और रोजगार तथा भरण पोषण के साधन समान्तर क्रम में बढ़ते हैं। 25 वर्ष में आबादी लगभग दोगुनी हो जाती है और विद्यमान साधन जनसंख्या की आवश्यकताओं को देखते हुए कम पड़ जाते हैं। इससे दरिद्रता, भ्रष्टाचार और बेरोजगारी को प्रोत्साहन मिलता है। समाज में अमानवीय कृत्यों जैसे मिलावट, घूस, चोरी-डकैती और व्यभिचार को बढ़ावा मिलता है। इससे समाज का नैतिक पतन होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि पर्यावरण के साथ-साथ अन्य महत्वपूर्ण राजनैतिक, आर्थिक व सामाजिक बुराइयों की जड़ केवल बढ़ती हुई आबादी ही है। माल्थस एवं उसके समर्थक बढ़ती हुई आबादी की समस्या को ऐसी समस्या नहीं मानते कि इसका कोई समाधान ही न हो। जनसंख्या वृद्धि रोकने के लिए मानवीय तथा प्राकृतिक दोनों प्रकार के उपाय हैं। मानव आत्म-नियंत्रण ब्रह्मचर्य, देर से विवाह, वांछित संतानोत्पत्ति के बाद स्थायी रूप से बांध्यकरण या संतति निग्रह के कृत्रिम साधन अपनाकर जनसंख्या वृद्धि को प्रभावपूर्ण ढंग से रोक सकता है। ये उपाय सरल और आदर्श हैं। परन्तु जब मनुष्य स्वयं जनसंख्या नियन्त्रण करने में असफल हो जाता है तो प्रकृति अपने नैसर्गिक उपायों द्वारा जनसंख्या नियन्त्रण करती है। यह उपाय तभी क्रियाशील होते हैं जब कि पृथ्वी पर रहने वालों की संख्या उस संख्या से अधिक हो जाती है जितनी जनसंख्या के रहने और जीवन क्रियायें करने के लिए पृथ्वी पर स्थान है। इससे अधिक आबादी होने पर जब वायुमंडल, धरातल और पृथ्वी के अन्तरतल में छिपी अमूल्य प्राकृतिक सम्पदाओं का अन्धाधुन्ध शोषण होने लगता है और प्राकृतिक संतुलन में विकृति पैदा होने से पर्यावरण प्रदूषण अधिक हो जाता है तो प्रकृति विकराल रूप धारण कर लेती है और तूफान, भूचाल, सूखा, अकाल तथा बाढ़ आदि का प्रादुर्भाव होता है। इससे

(शेष पृष्ठ 11 पर)

सिमटती हरियाली, फैलते रेगिस्तान

विनोद कुमार और सुशीला कुमारी

रेगिस्तान मानव सभ्यता का खामोश संहारक बनकर सदियों से मानव आबादी का पीछा कर रहा है। फ्रांस के दार्शनिक चटोब्रियान्द ने 18वीं शताब्दी में कहा था, "मनुष्य जंगलों का पीछा करता है और रेगिस्तान मनुष्यों का।" यह बात आज सत्य साबित हो रही है। आज जंगल और उपजाऊ जमीन सिमट रहे हैं, लेकिन रेगिस्तान तेजी से फैल रहा है।

राजस्थान का थार रेगिस्तान प्रतिवर्ष आधा किलोमीटर की रफ्तार से चारों तरफ फैल रहा है। यह भविष्य में राजस्थान की राजधानी जयपुर और अन्ततः भारत की राजधानी दिल्ली को निगल जाएगा।

यह प्रतिवर्ष 12000 हेक्टेयर उपजाऊ जमीन को अपने चपेट में ले लेता है। यह दिल्ली की ओर ही नहीं, बल्कि पश्चिम राजस्थान, गुजरात, हरियाणा और दक्षिणी-पश्चिमी पंजाब की ओर भी तेजी से फैल रहा है और इस तरह एक दिन पूरा भारत रेगिस्तान में बदल सकता है। विश्व का सबसे बड़ा सहारा रेगिस्तान प्रतिवर्ष 15 लाख हेक्टेयर अर्थात् प्रति घंटे 170 हेक्टेयर की दर से फैल रहा है।

मरुस्थलीकरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन "(अनकोड)" की रिपोर्ट के अनुसार हरेक मिनट में 47 हेक्टेयर की उपजाऊ जमीन रेगिस्तान में बदल जाती है अर्थात् हरेक साल दो करोड़ सत्तर लाख हेक्टेयर उपजाऊ जमीन को रेगिस्तान निगल जाता है। अगर रेगिस्तान बनने की प्रक्रिया इसी तरह जारी रही तो इस शताब्दी के अंत तक विश्व भर में पृथ्वी के चौबीस करोड़ हेक्टेयर भू-भाग पर रेगिस्तान का जाल बिछ जाएगा। इस समय दुनिया में चालीस प्रतिशत भू-भाग पर अर्थात् 80 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल पर रेगिस्तान फैला हुआ है।

रेगिस्तान बनने की विनाशकारी प्रक्रिया धरती की पारिस्थतिकी, उत्पादन और उपज के उस आधार को ही नष्ट कर रही है, जो सदियों से मनुष्यों और वनस्पतियों के जीवन का आधार रहा है। यह गहरी खामोशी के साथ उस प्राकृतिक विनाश का आधार तैयार कर रहा है, जो आने वाले समय में धरती पर से सभ्यता का नामोनिशान मिटा देगा।

दुनिया में रेगिस्तान दो तरह के होते हैं– उष्ण रेगिस्तान और शीत रेगिस्तान। पश्चिमी गोलार्द्ध में अफ्रीका का सहारा, कालाहारी, नामीबिया और भारत का थार उष्ण रेगिस्तान के उदाहरण हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में मंगोलिया का गोबी और भारत के हिमालय क्षेत्र का लद्दाख शीत रेगिस्तान का उदाहरण हैं। भारत में लगभग दो लाख 86 हजार किलोमीटर का उष्ण रेगिस्तान तथा 70 हजार वर्ग किलोमीटर का शीत रेगिस्तान है। रेगिस्तान में मौसम बहुत ही उग्र रहता है। शुष्क रेगिस्तान का तापक्रम 1^0 से 55^0 सेल्सियस के बीच होता है, जबकि शीत रेगिस्तान में 2^0 से 25^0 सेल्सियस के बीच बदलता रहता है। वर्षा बहुत कम होती है और तेज रफ्तार से हवाएं चलती हैं। शुष्क रेगिस्तान अपेक्षाकृत अधिक तेजी से फैल रहा है।

भारत का थार रेगिस्तान

भारत में थार रेगिस्तान का क्षेत्रफल करीब 23 लाख 40 हजार वर्ग किलोमीटर है। यह पश्चिमी राजस्थान, गुजरात,दक्षिण-पश्चिमी पंजाब, हरियाणा तथा कर्नाटक के कुछ भागों में फैला हुआ है। थार मरुभूमि का 85 प्रतिशत भाग भारत में पड़ता है तथा कुछ भाग पाकिस्तान में पड़ता है। मरुभूमि का 91 प्रतिशत क्षेत्र राजस्थान में है। भौगोलिक क्षेत्र के अनुसार राज्य का 61 प्रतिशत भाग मरुभूमि है। थार रेगिस्तान जैसलमेर, बाड़मेर बीकानेर, जोधपुर, चुरू, श्रीगंगानगर, झुंझूनू जिलों को पूर्ण रूप से घेरे हुए है तथा नागौर, पाली, जैलोर तथा सीकर जिले के कुछ भागों को घेरे हुए है।

भारतीय महा-मरुस्थल में बालू के टीले वनस्पतियों के अभाव के कारण हवा के साथ खिसकते रहते हैं। तापक्रम में बहुत ज्यादा उतार-चढ़ाव तथा बहुत कम बारिश होती है। अक्सर लगभग 150 किलोमीटर प्रति घंटे की रफ्तार से रेतीली आंधियां चलती हैं, तीव्र सौर विकिरण तथा बहुत अधिक वाष्पोत्सर्जन होता है।

रेगिस्तान बनने के कारण

जमीन पर दूसरी जगह से आए बालू और बलुआ मिट्टी के बिछने, जमीन के अन्दर पानी की कमी होने से, बहुत दिनों तक

पानी जमा रहने, जमीन के अन्दर लवणीकरण अथवा अम्लीयकरण, घासों के ह्रास, कांटेदार झांड़ियों के उगने, अत्यधिक पैदावार लेने से जमीन की उर्वरता नष्ट होने, वनों की अन्धाधुन्ध कटाई तथा मिट्टी के कटने-छंटने से उपजाऊ जमीन बंजर हो जाती है और अन्ततः रेगिस्तान में बदल जाती है।

विश्व-स्तर पर रेगिस्तान बनने की प्रक्रिया निम्नलिखित कारणों से शुरू होती है:

1) विश्व जलवायु चक्र के कारण जलवायु में परिवर्तन होने से।
2) मानसून के न आने और साल-दर-साल सूखा पड़ने से।
3) जमीन से बहुत अधिक पानी निकाले जाने के कारण भूमिगत जल की मात्रा में कमी होने से।
4) गलत तरीकों से खनन, सिंचाई और खेती करने से।
5) जंगलों की अन्धाधुन्ध कटाई, पशुओं को एक ही स्थान पर चराने तथा मिट्टी के कटाव से।
6) जहरीले प्रदूषण फैलाने वाले विषैले पदार्थों के जमीन पर फैलने से और अम्लीय वर्षा होने से।

रेगिस्तान में सूक्ष्म जीव

रेगिस्तान में कुछ मात्रा में कार्बनिक पदार्थ मौजूद होते हैं जिसके फलस्वरूप वहां थोड़ी-बहुत वनस्पतियां उगती हैं और सूक्ष्म जीव मौजूद होते हैं। रेगिस्तानी मिट्टी में वनस्पतियों को हवा, प्रकाश और कुछ खनिज पदार्थ प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। यह मिट्टी पानी को सुरक्षित नहीं रख पाती और इसके कण एक-दूसरे से जुड़े नहीं रह सकते। इसलिए वनस्पतियों का उगना संभव नहीं होता।

रेगिस्तान में तापक्रम का उतार-चढ़ाव बहुत अधिक होता है। इसलिए कृषि-योग्य भूमि की तुलना में यहां सूक्ष्म जीव अपेक्षाकृत कम पाए जाते हैं। रेगिस्तान में मौजूद सूक्ष्म जीवों को मुख्यतः चार भागों में बांटा जा सकता है– शैवाल (अल्गी), कवक (फन्जाई), जीवाणु (बैक्टीरिया) तथा एक्टिनोमाइसिट्स। सूक्ष्म जीव कवच (सिस्ट), बीजाणु (स्पोर) तथा सहजीवी साहचर्य विकसित कर अपने को तेजी से प्रतिकूल परिस्थितियों के अनुसार ढाल लेते हैं।

कवक (फन्जाई), जीवाणु (बैक्टीरिया) तथा एक्टिनोमाइसिट्स रेगिस्तान में एक हिस्से से दूसरे हिस्से में आते-जाते रहते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि गर्मी के महीनों में जब मिट्टी की सतह का तापक्रम 50° सेल्सियस तक पहुंच जाता है, उस समय भी सूक्ष्म जीवों की आबादी पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ता है।

रेगिस्तान में हरियाली की वापसी

केन्या की राजधानी नैरोबी में 1977 में आयोजित ''मरुस्थलयकरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (अनफोड)'' में विश्व स्तर पर मरुस्थलीकरण के संकट से निबटने के लिए एक कार्य योजना बनायी गयी। इस पर्यावरण संकट पर रोक लगाने तथा रेगिस्तान को हरा-भरा बनाने के लिए वनरोपण को सबसे प्रभावी तरीका माना गया है।

वनरोपण को सफल बनाने के लिए रेगिस्तान की प्रकृति और पारिस्थितिकी के अनुकूल पौधों का चुनाव करना अत्यंत जरूरी है अन्यथा वनरोपण न केवल बेकार हो जाएगा बल्कि रेगिस्तान की पारिस्थितिकी को भी नुकसान पहुंचाएगा।

बंजर और रेगिस्तानी जमीन पर उगायी जाने वाली वनस्पतियां सदाबहार किस्म की तथा बहुद्देशीय हों ताकि ये प्रतिकूल पारिस्थितिकी और हरेक मौसम में बढ़ सकें और इनका उपयोग विभिन्न कार्यों में जैसे जलावन की लकड़ी में, कागज, पल्प, चटाई, रस्सी इत्यादि बनाने में हो। इनमें कंटीली झाड़ियां हों ताकि ये जानवरों से अपना बचाव खुद कर सकें। इनसे प्राप्त होने वाली लकड़ियों की ज्वलन क्षमता अधिक हो। तेजी से उगने और बढ़ने वाली हों। ये वातावरण से अधिक-से-अधिक नाइट्रोजन और कार्बन लेने वाली हों। इनकी जड़ों में पानी सोखने की शक्ति अधिक हो तथा इनकी जड़ें जमीन में बहुत गहराई तक जा सकें। ये गर्मी और सूखा बर्दाश्त करने वाले हों तथा मिट्टी और बालू को बांधने और हवा को रोकने का काम कर सकें। विभिन्न तरह के कीटों के हमले को सहने वाली हों। इसके लिए जिन पौधों का चुनाव किया गया है, इनमें आडु, इमली, आंवला, झौआ, कैर, सू-बबूल, शीशम, सीरिस, अगस्त, रोहिरा, बेर और नीम इत्यादि भी शामिल हैं। ये पौधे चट्टानों और बालुओं पर भी बढ़नेवाले होते हैं। इन्हें जीवित रहने के लिए बहुत कम नमी की आवश्यकता होती है। ये विश्व के किसी भी रेगिस्तान में लगाए जाते हैं।

आगवे सिसलाना तथा एम्फिपोगन कारिसिनस जैसे बालू को बांधने वाले घासों को रेगिस्तान के एक स्थान के बालू को आपस में बांधने तथा रेगिस्तान को फैलने से रोकने के लिए इस्तेमाल में ला सकते हैं। बांस की नई नस्ल की जाति डैन्ड्रोकालामस बैडिसियाई बहुत तेज गति से करीब चार सेन्टीमीटर प्रति घंटे की रफ्तार से बढ़ती है। इसके अलावा तेजी से बढ़ने वाले अन्य पेड़ पौधे जैसे शीशम और आडु भी रेगिस्तान के चुने हुए हिस्सों में लगाए जा सकते हैं। ये हवा की गति को कम करने का कार्य करते हैं।

रेगिस्तान की पारिस्थितिकी के अनुसार तीन तरह के वनरोपण कार्यक्रम चलाए जा सकते हैं–(1) घास रोपण (2) ऊर्जा वनरोपण और (3) व्यावसायिक वनरोपण। रेगिस्तान के लिए घास रोपण सर्वाधिक अनुकूल है।

रेगिस्तान में इमारती लकड़ी, रेशे, उर्वरक, रबर, गोंद, टैनिन, खाद्य और अखाद्य तेल, जैव कीटनाशी और कागज बनाने की लुगदी बनाने के काम में आने वाले पौधे लगाकर व्यावसायिक और औद्योगिक उद्देश्यों की पूर्ति की जा सकती है।

इनमें यूफोर्बिया लैरिका, यूफोर्बिया टाइरूकाली, जैट्रोफा करकस और रिसिनस कोम्मुनिस किस्म के पौधे हैं। यूफोर्बिया से अच्छी मात्रा में हाइड्रोकार्बन (C_{14}) यौगिक प्राप्त किए जा सकते हैं जिनसे पेट्रोलियम के समान गुण वाले उत्पाद बनाये जा सकते हैं। जैट्रोफा से एक खास किस्म का तेल प्राप्त किया जाता है, जिसका इस्तेमाल डीजल ईंधन के विकल्प के तौर पर हो सकता है। रेगिस्तान में अनेक जड़ी-बूटियों के उत्पादन की प्रचुर संभावना है।

रेगिस्तान में जल संरक्षण

रेगिस्तान को हरा-भरा बनाने की रणनीति में जल-संरक्षण का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इसके लिए एल्किन सक्सिनिक अम्ल जैसे वाष्पोत्सर्जन रोकने वाले रसायन बहुत उपयोगी हैं। रेगिस्तान में वर्षा का पानी रोकने के लिए सीमेंट के तालाब और बांध बनाकर जल-संरक्षण किया जा सकता है। बड़े-बड़े भूमिगत छिद्रदार जारों की मदद से रेगिस्तान में वाष्पीकरण से होने वाली पानी की कमी को दूर किया जा सकता है। इन जारों की क्षमता 40 से 50 गैलन होनी चाहिए। इन जारों के छिद्र से पानी धीरे-धीरे निकल कर पौधों की जड़ों तक पहुंचता है और समूचे क्षेत्र में नमी बनाए रखता है। फव्वारा सिंचाई रेगिस्तान में सिंचाई का बेहतर तरीका है।

कुछ पर्यावरणवादी रेगिस्तान को हरा-भरा बनाये जाने के ऐतिहासिक प्रयास को "प्रकृति के साथ मनुष्यों के छेड़-छाड़" की संज्ञा देते हैं तथा भविष्य में पर्यावरण संकट उत्पन्न होने का संकेत देते है जबकि कुछ इसे "हरियाली की वापसी" बताते हैं।

चाहे जो भी कहा जाए लेकिन इतना स्पष्ट है कि अगर रेगिस्तान के फैलाव को रोका नहीं गया तथा रेगिस्तान को हरा-भरा बनाने का समन्वित प्रयास नहीं किया गया तो अगले सौ वर्ष में भारत और विश्व का नक्शा कुछ और होगा और यह शायद अत्यन्त भयावह होगा।

दुनिया के रेगिस्तानों को मनुष्यों के काम लायक बनाना मानव जाति के समक्ष एक बहुत बड़ी चुनौती है। भारत में थार रेगिस्तान को हरा-भरा बनाने का प्रयास प्रकृति पर आदमी के नियंत्रण का दुर्लभ उदाहरण है। थार रेगिस्तान में 149 किलोमीटर लंबी राजस्थान नहर (जिसे अब इंदिरा गांधी नहर कहा जाता है) की खुदाई प्रकृति पर मानव की विजय का संकेत है। रेगिस्तान में नहर के आने के बाद, खास कर कमान्ड क्षेत्र में रेगिस्तान का नक्शा ही बदल गया। थार का "रेगिस्तानी पर्यावरण" जल्द ही "सदाबहार वनों के पर्यावरण" में बदलने लगा है। राजस्थान वन विभाग ने 'पर्यावरण कार्य दल' नाम से मशहूर एक्स सर्विस मैन आफ टेरिटोरियल आर्मी के सहयोग से वनरोपण कार्य शुरू किया है।

81, समाचार अपार्टमन्टस,
मयूर विहार फेज I, एक्सटेंशन, दिल्ली-110091

(पृष्ठ 8 का शेष)

कहीं पर पहाड़ कहीं पर खाइयां, कहीं पर टीले तो कहीं पर झीलें बन जाती हैं। इसके बाद बीमारियां और महामारियां आती हैं। इन सब घटनाओं से अत्यधिक नरसंहार होता है और जनसंख्या का इतना विनाश होता है कि गांव के गांव और शहर के शहर जन विहीन हो जाते हैं। इसमें मकान, कारखाने, पशु-पक्षी एवं वनस्पति आदि सब कुछ नष्ट हो जाता है। अतः जनसंख्या नियंत्रण के प्राकृतिक उपाय बहुत कष्टदायक एवं भयानक होते हैं। इसलिए मानवीय प्रयासों के द्वारा जनसंख्या नियंत्रण करके पर्यावरण प्रदूषण को समाप्त किया जाना चाहिए। हम किसी भी प्रकार की गन्दगी फैलाने वाला कार्य न करें तथा अन्य लोगों को भी गन्दगी फैलाने से रोकने के लिए प्रयास करें, स्वयं वृक्ष लगायें और अन्य लोगों को भी बेकार पड़ी भूमि व अन्य महत्वपूर्ण स्थानों पर वृक्ष लगाने के लिए प्रेरित करें, अपना परिवार सीमित रखें तथा अन्य लोगों को भी परिवार परिसीमन के लिए प्रेरित करें। इससे प्रदूषण समाप्त होगा और स्वच्छ पर्यावरण में जीवन यात्रा सुखमय हो जायेगी।

राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
रामपुर, (उ. प्र.)–244901

हरितगृह प्रभाव और पर्यावरण

✍ डॉ. गुलाब सिंह बघेल

वैज्ञानिक प्रयोगों के लिए निर्मित कांच से आच्छादित कृषि फार्म में सूर्य की किरणें प्रवेश कर वहां की वायु को गर्म करती हैं। परन्तु कांच की दीवारें इस गर्मी को बाहर की ठण्डी वायु के सम्पर्क में नहीं आने देती फलतः फार्म के अन्दर का तापमान बाहर के तापमान से अधिक हो जाता है। इसी को 'ग्रीन हाउस प्रभाव' या 'हरित गृह प्रभाव' के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

विश्व सन्दर्भ में वायुमण्डल में कुछ गैसें पृथ्वी के चारों ओर संरक्षित घेरा बना लेती हैं जिससे कि सूर्य की रोशनी पृथ्वी पर आ तो जाती है किन्तु पृथ्वी से लौटती किरणों को वापस अन्तरिक्ष में जाने से रोकती हैं जिससे वायुमण्डल का तापमान बढ़ता जा रहा है और उसके कुप्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इन प्रभावों को ही 'हरितगृह प्रभाव' (Green House Effect) के नाम से जाना जाता है।

उल्लिखित उदाहरण के अनुरूप यदि हम सम्पूर्ण पृथ्वी को हरा-भरा कृषि फार्म मान ले तो कांच की दीवार का काम कार्बन डाइ आक्साइड, मीथेन, क्लोरोफ्लुअरो कार्बन की परतें करती हैं। इन गैसों की मात्रा पेड़ों की अंधाधुन्ध अवैज्ञानिक विधि से कटाई तथा विश्व के देशों का औद्योगिकीकरण होते जाने से बढ़ती जा रही है। इसके परिणामस्वरूप सूर्य की प्रकाश किरणें पृथ्वी को गर्म करती हैं परन्तु उनके सम्पर्क से पृथ्वी की सतह से उत्पन्न होने वाली इन्फ्रारेड किरणों को ग्रीन हाउस गैसों की परत रोक लेती है जिससे पृथ्वी का तापमान निरन्तर बढ़ता जा रहा है। सर्वाधिक भयावह तथ्य यह है कि इससे विश्व की जलवायु में जो अस्थिरता आयेगी उससे बाढ़ व सूखा बढ़ेगा और ध्रुवीय क्षेत्रों के हिम पिघलने से भारत, बांग्लादेश तथा मालदीव जैसे देशों के काफी भूभाग जलमग्न हो सकते हैं।

वैज्ञानिकों ने आकलन किया है कि सन् 2050 तक महासागरीय जल तल 20 सेन्टीमीटर ऊंचे हो जायेंगे। 21 वीं शताब्दी के अन्त तक उनका जल तल स्तर 65 सेन्टीमीटर तक ऊंचा उठ सकता है। इस स्थिति में प्रशान्त महासागर के लगभग 300 द्वीप पानी में विलीन हो|जायेंगे हिन्द महासागर व कैरेबियन सागर में अनेक द्वीप राष्ट्रों का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायेगा। उत्तरी अमरीका और भूमध्य सागर के निकटवर्ती उर्वर क्षेत्र बंजर बन जायेंगे। भारतवर्ष में उत्तरी क्षेत्र में गेहूं का उत्पादन कम, पूर्व के तटवर्ती भागों में भयंकर तबाही लाने वाले तूफान और बाढ़ आ सकती है। सामान्य रूप से पृथ्वी का तापमान बढ़ने से उर्वर क्षेत्रों में नमी का स्तर घट जायेगा परिणामतः अनेक क्षेत्र मरुस्थल बन जायेंगे।

आज सभी वैज्ञानिक इस तथ्य को मान रहे हैं कि पृथ्वी के गर्म होने की प्रक्रिया प्रारम्भ ही नहीं अपितु तीव्रतर होती जा रही है। विगत 100 वर्षों में हमने पृथ्वी को विनाश के कगार पर ला दिया है। उष्मा को रोक लेने वाली तरह-तरह की गैसों को अत्यधिक मात्रा में वायुमण्डल में छोड़कर हमने पृथ्वी पर हो रहे जलवायविक परिवर्तनों को बढ़ावा दिया है। प्रतिवर्ष वायुमण्डल में सम्मिलित हो जाने वाली लगभग 1.8 अरब टन कार्बन-डाइ-ऑक्साइड धुएं से पैदा होती है। इसके अतिरिक्त 36 करोड़ हेक्टेयर में चावल की कृषि से मीथेन बनती है, जो कि गर्मी बढ़ाने वाली गैस अर्थात् 'ग्रीन हाउस गैस' मानी जा सकती है।

सारणी क्रमांक-1
हरितगृह प्रभाव वाली गैसों का उत्सर्जन

		(अरब टन कार्बन में)	(प्रतिशत में)
1.	अमरीका	1000	31.94
2.	सी. आई. एस.	690	22.04
3.	ब्राजील	610	19.49
4.	चीन	380	12.14
5.	भारत	230	7.35
6.	जापान	220	7.03

स्रोत– विश्व संसाधम संस्थान

महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि लगभग 1.2 अरब जुगाली करने वाले पशु भी कुछ मात्रा में मीथेन गैस वातावरण में छोड़ते रहते हैं।

पश्चिम के विकसित देश विश्व में सर्वाधिक जीवाश्म ईंधन पेट्रोल का उपयोग करते हुए तथा चरम सीमा तक किये औद्योगिकीकरण के कारण ग्रीन हाउस गैसों को जन्म दे रहे हैं। सारिणी क्रमांक 1 से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है।

विकसित देशों का कहना है कि विकासशील देशों में होने वाला वन विनाश (Deforestation) अवैज्ञानिक पशुपालन तथा चावल की सिंचित खेती से निकलने वाली मीथेन (Methene) गैस से हैं। पृथ्वी की जलवायु को डगमगाने के अपराध में किसकी भागीदारी कितनी है इसे निर्धारित करके उसे नियंत्रित किया जाना चाहिए। सारणी क्रमांक-2

है कि वन वायुमण्डल में कार्बन चक्र को व्यवस्थित करने का कार्य भी करते हैं। अनुमान है कि पेड़-पौधों और पृथ्वी में कुल 2000 खरब टन कार्बन डाई आक्साइड समाई है जो वायुमण्डल की कुल कार्बन डाई आक्साइड की लगभग तीन गुनी है।

पृथ्वी का औसत तापमान 15° सेल्सियस है जिसमें कि कार्बन डाई आक्साइड के दो गुना होने से लगभग 2° सेल्सियस की वृद्धि हो जायेगी। पारिस्थितिकी वैज्ञानिकों का मानना है कि 2° सेल्सियस तापमान की वृद्धि पृथ्वी के जीवन को नष्ट करने के लिए पर्याप्त है। यहां उल्लेखनीय है कि पिछले हिमयुग की समाप्ति केवल 4° सेल्सियस ताप के अन्तर पर हुई थी। पृथ्वी पर से विशालकाय डायनासोर (Dinosaures) की विलुप्ति का कारण भी यही 'ग्रीन हाउस प्रभाव' ही था। अनुमान है कि सन् 2050 तक तापमान 4° से 5° सेल्सियस के मध्य तक बढ़ जायेगा और

सारिणी क्रमांक-2 वनों के विनाश से उत्पन्न कार्बन डाई आक्साइड

क्रमांक	महाद्वीप/देश	कार्बन डाई आक्साइड (करोड़ टन में)
1.	अमरीका	66.50
2.	एशिया	62.10
3.	अफ्रीका	37.30
4.	भारत	3.30

वातावरण में उत्सर्जित हो रही इस कार्बन-डाई-आक्साइड से पर्यावरण का तापमान बढ़ रहा है। वायुमण्डल में व्याप्त गैसों में कार्बन-डाई-आक्साइड का अंश मात्र 0.03 प्रतिशत है। पृथ्वी की सतह से बिखरती ऊष्मा को यह गैस सन्तुलित करके जीवन रक्षा के अनुरूप बनाये रखती है। इसकी मात्रा बढ़ने से निर्विवाद रूप से तापमान बढ़ रहा है। मौसम विज्ञानी 25 वर्ष में पृथ्वी का तापमान औसत रूप से 1 से 2° सेल्सियस बढ़ने की भविष्यवाणी करते हैं, कुछ विशेष क्षेत्रों में यह बढ़त 6° सेल्सियस तक हो सकती है। विगत 50 वर्षों में इसके तापमान में 1° सेल्सियस की वृद्धि हुई है। पिछले 100 वर्षों में 24 लाख टन आक्सीजन (O_2) वायुमण्डल से समाप्त हो चुकी है और उसके स्थान पर 36 लाख टन कार्बन डाई आक्साइड की वृद्धि हुई है।

अब यदि पृथ्वी को गर्म होने से बचाना है तो वायुमण्डल की ओर जाने वाली हरित प्रभाव वाली गैसों को कम करना पड़ेगा। आज की परिस्थिति में कार्बन डाई आक्साइड को कम करने के लिए 11 करोड़ हेक्टेयर भूमि पर और वन लगाये जाने चाहिए। इन वनों के माध्यम से लगभग 70 करोड़ टन कार्बन डाई आक्साइड को वायुमण्डल में जाने से रोका जा सकेगा। सर्वविदित

यह बढ़त ध्रुवीय प्रदेशों में लगभग 9° सेल्सियस होगी। परिणामस्वरूप ध्रुवीय प्रदेशों की बर्फ पिघलकर समुद्रतल को लगभग 20 सेंटीमीटर ऊंचा कर देगी। वैज्ञानिक इस बात से चिन्तित हैं कि पृथ्वी का बढ़ता हुआ तापमान अनेक क्षेत्रों को शुष्क कर रहा है। मानवीय गतिविधियां निरन्तर ग्रीन हाऊस प्रभाव वाली गैसों को बढ़ावा दे रही हैं। यदि समय रहते इस ओर ध्यान न दिया गया तो पृथ्वी एक दिन जलते हरित गृह (हाट ग्रीन हाऊस) में बदल जायेगी।

'ग्रीन हाऊस प्रभाव' को कैसे नियंत्रित किया जाये?

पृथ्वी पर बढ़ती गरमी को नियंत्रित करने के लिए निम्नलिखित उपाय किये जाने चाहिए:

1. देशों को ऊर्जा खपत के अपने ढांचे में परिवर्तन लाने चाहिए।
2. कोयला, पेट्रोल व लकड़ी जैसे प्राकृतिक माध्यमों का उपयोग तापमान बढ़ाने के लिए सीधे उत्तरदायी है। अतः इनका विकल्प खोजा जाना चाहिए।
3. परमाणु ऊर्जा के उपयोग को बढ़ाया जाए।

(शेष पृष्ठ 41 पर)

हमारे गणतंत्र के आधार स्तंभ
न्याय
स्वतंत्रता
समानता
बंधुत्व
धर्मनिरपेक्षता
davp 93/628

कहानी

फर्ज

✍ शरद उपाध्याय

जेठ का सूरज आग उगल रहा था। दिशाएं जैसे धू-धू करके जल रही थीं। बीच-बीच में लहकती आग की लपटों से गरम हवा के झोंके बदन को झुलसा देते। गनौरी की पसीने से भीगी देह को छूकर लू के झोंके कुछ क्षणों के लिए निस्तेज हो उठते लेकिन पसीने के सूखते ही देह बुरी तरह जल उठती।

नंगी देह पर लू के झोंके पड़ते ही वह कांप उठता । कई बार उसने सिरहाने पर रखी कमीज उठाकर पहनने का उपक्रम किया लेकिन लू के झोंके से तपी हुई कमीज पर हाथ पड़ते ही उसका इरादा बदल जाता।

धूप खिसककर टापरी के भीतर प्रवेश कर गई। हालांकि धूप उससे दो-तीन हाथ दूर थी, फिर भी उसे शरीर का ताप बढ़ता हुआ महसूस हुआ। कुछ क्षण तो वह दम साधे लेटा रहा लेकिन जब गर्मी असह्य हो उठी तो झुंझला कर उठा और खाट को तेजी से अंदर की ओर खिसकाया। झुंझलाहट में उसने खाट को कुछ अधिक जोर से धकेला। खाट का एक पाया समीप ऊंघती हुई गाय से टकराया। गाय चौंककर उठ खड़ी हुई।

अलसाए गनौरी को गाय की यह हरकत नागवार गुजरी। वह जोरों से चिल्लाया। पर उसका प्रभाव उलटा पड़ा गाय घबराकर टापरी से बाहर धूप में निकल गई। गनौरी कुछ देर तक उसे अंदर बैठने के लिए पुकारता रहा। पर वह उसकी अप्रत्याशित हरकत से इतनी घबरा गई थी कि अंदर नहीं आई।

गनौरी झल्लाता हुआ पुनः लेट गया, साले इन जानवरों के मारे भी नाक में दम है, कहने को तो एक गाय है पर मुसीबत दुनिया भर की है। घर में बच्चों को खिलाने को दाना नहीं है, पर इसके लिए दुनिया भर के जंजाल जरूरी हैं। भूसा लाओ, पूले लाओ, खल लाओ। यहां बच्चे बीमार पड़ते हैं तो सरकारी अस्पताल का लाल पानी पीकर खैर मना लेते हैं। लेकिन इसके लिए तो दुनिया भर की दवाइयां खरीदनी पड़ती हैं।

गनौरी की बड़बड़ाहट सुनकर सुगना बाहर निकल आई। अपने पति की आदत को वह अच्छी तरह जानती थी। दिन-रात वह गाय को कोसता रहता था। पर गाय की तीमारदारी में जरा भी कसर होने पर वो घरवालों की अच्छी खबर ले लेता था। अभी कुछ दिनों पहले ही एक रात गाय घर पर नहीं आई थी तो रात भर नहीं सो पाया था।

"क्या बात है गनेसी के बापू, काहे को चिल्ला रहे हो।"

"क्या चिल्लाऊंगा, अपनी किस्मत को कोस रहा हूं। न घर में चैन, न बाहर चैन। दिन भर दफ्तर में चपरासिगिरि करो और घर में इस कमबख्त की गुलामी करो। अभी पिछले महीने ही दो सौ रुपये लगा के बैठा हूं। दुनिया भर का खर्चा और दूध नाम का। अबकी हाट आने दो, सौ-दो सौ का नुकसान उठाकर भले ही इसे कसाई के हाथ बेचना पड़े, पर इस बार या तो यह गाय ही रहेगी या मैं ही रहूंगा।"

गनौरी की बात सुनकर सुगना हंस पड़ी, "तो इस बार आपने फैसला कर ही लिया।"

"हां, कल हाट है, कल यह गाय घर में नहीं रहेगी।"

"तो कल इसे बेच ही आओ, मैं भी कहां तक इसके पीछे मारी-मारी फिरती रहूं। एक तो गारा-गोबर से फुर्सत नहीं मिलती, तिस पर दुनिया भर के काम। पर आप भी बस कहते ही रहते हो, महीनों से सुनती आ रही हूं, अभी तक गाय नहीं बिकी। पर गनेसी के बापू, आज कह दिया तो आप को गनेसी की सौंगध। कल यह गाय घर में नहीं दिखनी चाहिए।" सुगना एकाएक उखड़ गई। एक अर्से से वो गनौरी का यह नाटक देखती जा रही थी। दिन-रात गाय को कोसना और फिर उसके आगे-पीछे दौड़ना।

"अब इस भीषण अकाल में बच्चों को खिलाना ही भारी पड़ रहा है। गेहूं भी ढाई सौ पार कर गए। हम कहां से लाए चारा-पानी। आप तो बेच ही आओ इसे। नहीं होगा तो पाव भर दूध लेकर एक टैम चाय ही पी लिया करेंगे।"

सुगना का बदलता रूप देखकर गनौरी स्तब्ध रह गया। उसने कमीज पहनी और घर से बाहर निकल गया।

घर से निकलकर भी भला जाता कहां, जाकर स्कूल के बरामदे में बैठ गया। "सुगना भी सही कहती है, इतनी मंहगाई में जहां बच्चों का पेट पालना भी भारी पड़ रहा है। गाय पर पैसा खर्च करना फिजूल है, और मोल का दूध ले लेंगे। कौन सा रोज-रोज खीर बनाकर खानी है, एक टैम चाय मिल जाए, बस दिन भर निकल जाता है।"

उस दिन अंधियारे तक वहीं बैठा रहा। जब बरामदे में सड़क पर लगे बल्ब की पीली रोशनी बिखरने लगी तो उसे होश आया। वह उठकर घर की ओर चल दिया।

घर में सब-कुछ आम दिनों की तरह चल रहा था। उसके मन के अलावा घर में कहीं भी द्वंद्व नहीं चल रहा था।

हाथ-मुंह धोकर वह बाहर आंगन में ही खाना खाने बैठ गया। उसने अभी पहला ग्रास ही तोड़ा था कि उसकी निगाह सामने तबेले में पड़ी गाय पर पड़ी। गाय कोने में खड़ी उसी को ताक रही थी। एकाएक उसका दिल भर आया। पिछले छह साल से गाय परिवार के साथ थी और बिल्कुल परिवार के सदस्य की तरह रह रही थी। सुबह से उसके मन में गाय के लिए सहानुभूति नहीं उमड़ी थी। पर अचानक उसे इस निरीहता के साथ ताकते देख उसे अपने अंदर कुछ अटकता सा महसूस हुआ। उससे खाना नहीं खाया गया और उठ खड़ा हुआ।

तभी सुगना हाथ में रोटी लिए झोंपड़ी से निकली। गनौरी को खड़े देख चौंक उठी, "ये क्या, रोटी क्यों नहीं खाई।"

"बस वैसे ही, भूख नहीं है। मंगला के उधर से निकल रहा था, उसने दाने की रबड़ी बनाई थी, वही खिला दी। मैंने लाख मना किया पर वह नहीं मानी। मैं. . . . ."

"बस-बस रहने दो, सुगना बात काटकर बोली, "ये क्यों नहीं कहते कि गाय की वजह से रोटी नहीं खा रहे हो।"

गनौरी, जोकि भरसक प्रयास कर रहा था कि सुगना उसकी मनोस्थिति को न समझ पाए, अपनी असलियत खुलते देख झुंझला उठा, "इसके लिए क्यों छोडूंगा रोटी, मेरी तरफ से भले ही यह जहन्नुम में जाए।"

सुगना भुनभुनाती हुई अंदर चली गई। गनौरी थोड़ी देर टहला और फिर वहीं पड़ी खाट पर लेट गया।

रात गहराती गई और धीरे-धीरे बच्चे और अंत में सुगना भी सो गई। पर गनौरी की आंखों में नींद कहां, उसके मन में भयंकर द्वंद्व चल रहा था। एक क्षण वह गाय को बेचने की बात सोचता, तभी उसके समक्ष गाय का चेहरा आ खड़ा होता। मूक, निरीह और अपनत्व से भरा चेहरा। लेकिन दूसरे ही क्षण उसे लगता जैसे सुगना उसका मजाक उड़ा रही है।

वह कुछ समझ नहीं पा रहा था। उसने उठकर लाइट जलाई और मटकी से दो गिलास पानी पिया। ऊपर आसमान में चांद कहीं बादलों के पीछे छुप गया था। पानी पीकर वह लाइट बंद करने लगा, तभी उसकी निगाह सामने तबेले में खड़ी गाय पर पड़ी, उसका हाथ ठिठक गया। गाय उसकी ओर ही देख रही थी, बरामदे में टंगे बल्ब का प्रतिबिम्ब उसकी आंखों में चमक रहा था जो कि दूर से ऐसा प्रतीत होता था, मानो गाय रो रही है।

वह तड़प उठा। एक क्षण के लिए उसे कुछ याद नहीं रहा। वह गाय के पास जाकर वहीं जमीन पर बैठ गया। उसने उसकी गर्दन पर हाथ फिराया तो वह उसका हाथ चाटने लगी। यह देख उसके आसू निकल पड़े, वह रोने लगा। वह जाने कितनी देर तक रोता रहता पर थोड़ी देर बाद उसने बांए कंधे पर कुछ दबाव सा महसूस किया। उसने घूमकर देखा, सुगना न जाने कब उठकर वहां आ गई थी।

सुगना ने उसका कंधा थपथपाया, "आप रोओ मत, गाय कहीं नहीं जाएगी। यह हमारे साथ ही रहेगी।"

उसने कुछ बोलने की कोशिश की, पर रुलाई के मारे वह कुछ बोल नही पाया। सुगना ने उसके आंसू पोंछे, "दिन में मुझे इसलिए गुस्सा आ गया था कि आप इसे बार-बार कोसते रहते थे। भला अपनी मां को भी कोई इस तरह कोसता है, यह तो हमारी मां है, हम इसे कैसे बेच सकते हैं जब हम बच्चों का फर्ज पूरा कर रहे हैं तो भला मां का क्यों नहीं करेंगे।"

उसे लगा कि धुंध छट गई है। आकाश में अब दूर-दूर तक बादलों का पता नहीं था। स्वच्छ एवं निर्मल आकाश में चांद मुस्करा रहा था।

सरस्वती कालोनी,
खेड़ली फाटक,
कोटा-3240001

प्रदूषण का काला धुआं और मनुष्य

✍ राजीव रंजन वर्मा

सारे विश्व में औद्योगिक विकास के बढ़ते चरण के साथ-साथ वायुमण्डल का प्रदूषण भी बढ़ता जा रहा है। परमाणु—युग में प्रवेश ने पारमाणविक अस्त्रों की होड़ महाशक्तियों में पैदा कर दी है। इसके लिए उन्हें नए अस्त्रों के परीक्षण भी करने होते हैं। प्रदूषण के काले धुएं के साथ-साथ नए अस्त्रों के परीक्षण ने भी वायुमण्डल को विषैला बनाया है। सम्पूर्ण विश्व विषैले धुएं की कोठरी में बंद घुटन महसूस कर रहा है। प्राणघातक बीमारियां व्यापक हो रही हैं। मनुष्य की जिन्दगी छोटी होती जा रही है। दुर्भाग्य यह है कि सब कुछ बढ़ने की अति इच्छा में यह मानव की अपनी कृति है।

विश्व की जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ औद्योगिक विकास का मार्ग अवरुद्ध नहीं किया जा सकता। कारखानों, भट्ठों और वाहनों से निकलने वाले धुएं वायुमण्डल को विषाक्त बनायेंगे ही। अतः प्रदूषण से मनुष्य के बचाव की व्यवस्था मनुष्य को ही करनी है।

औद्योगिक क्षेत्र में प्रदूषण नियंत्रण की चर्चा अमरीका में धुआं और कुहासा (कुहरा) से उत्पन्न संकट पर हुई थी। वैज्ञानिकों का कहना है कि धुआं जहां एक ओर वायुमण्डल में जहर घोलता है, वहां कुहासा उसे भरे वायुमण्डल के दबाव में धरती के पास रखने में मदद करता है। वायुमण्डल की ऊपरी सतह पर ओजोन परत गैस की एक 20 कि. मी. मोटी परत है। यह परत पृथ्वी के चारों ओर उपस्थित है, जो सूर्य के प्रकाश के लिए फिल्टर का काम करती है। सूर्य के अदृश्य प्रकाश में उपस्थित पराबैंगनी किरणों को शोषित करने में ओजोन परत की प्रमुख एवं महत्वपूर्ण भूमिका है। 1952 में लंदन में भारी वाहनों ने ही वहां के वायुमण्डल को इतना विषैला बना डाला था कि लाखों लोग उसके शिकार हो गए थे।

आजादी के बाद गरीबी से मुक्ति के लिए भारत को तेजी से औद्योगिक विकास की जरूरत पड़ी। किन्तु उसके साथ ही, सहज परिणाम 'प्रदूषण' से बचाव के लिए संसद को प्रदूषण नियंत्रक विधेयक भी स्वीकृत करना पड़ा। 1984 में 'भोपाल गैस कांड' देश के लिए काफी घातक साबित हुआ। कृषि की कीटनाशक दवाओं के निर्माता अमरीकी कम्पनी 'यूनियन कार्बाइड' की भूल से मैथिल आइसो साइनाइट गैस वायुमण्डल में घुल गयी। परिणामस्वरूप हजारों लोग और जानवर मौत के मुंह में चले गये।

कुटीर उद्योग धंधों के अलावा गांवों के आसपास भी कई बड़े-बड़े कल-कारखाने खुलने लगे हैं, जिनका कूड़ा-कचरा और विषैले तरल पदार्थ पास के नदी नालों और जलाशयों में गिराये जाने लगे हैं, जिनसे उनका जल विषाक्त हो रहा है। इसके साथ ही साथ शवों को जलाने की सुविधा न होने के कारण अनेक लोग इन्हें नदियों और नहरों में बहा देते हैं, जिससे जल प्रदूषण की गंभीर समस्या पैदा हो जाती है।

मथुरा रिफायनरी से उठते धुएं के कारण ताजमहल की चमक फीकी पड़ गयी है। सफेद संगमरमर से बनी यह खूबसूरत ऐतिहासिक इमारत पीली पड़ने लगी है। महाराष्ट्र में मर्करी फैक्टरी का गंदा जल कृष्णा नदी में, बिहार में डालमिया के कारखानों का गंदा जल सोन नदी में, बरौनी के तेलशोधक कारखाने का विषाक्त जल गंगा नदी में, औद्योगिक नगर कानपुर के विविध कारखानों की उच्छिष्ट सामग्रियां और गंदा जल गंगा में गिरकर इन नदियों को प्रदूषित कर रही है। मोकामा में बाटा का चमड़ा कारखाना और शराब की फैक्ट्री का जहरीला जल पावन गंगा को दूषित कर रहा है। इस प्रदूषण पर नियंत्रण के लिए प्रदूषण नियंत्रण-परिषद तथा गंगा आथारिटी अब सचेष्ट हो गयी है। गंगा सफाई अभियान भी जोरों पर है।

नदियों का जल प्रदूषण किनारे बसे नगरों का गंदा पानी उसमें गिराने के कारण भी होता है। वाराणसी, पटना आदि का गंगा जल तो पीने के योग्य कौन कहे, स्नान करने के लायक भी नहीं रह गया है। नदियां और नहरें तो दूषित रहती ही हैं कुएं और तालाब भी उचित रख-रखाव के अभाव में प्रदूषित हो गये हैं। तालाबों, नहरों तथा दूसरे जलाशयों में लोग कूड़ा-कचरा, विषैले तरल पदार्थ और कभी कभी तो जानवरों के शव डाल देते हैं जिससे जल प्रदूषित हो जाता है। कुओं के आसपास जमा जल सड़ जाता है जिसमें तरह-तरह के विषैले कीटाणु पैदा हो जाते हैं और मनुष्य को रोगग्रस्त कर देते हैं।

पहले प्रदूषित जल में क्लोरिन देकर शुद्ध करने की पद्धति थी। किन्तु शोध एवं सर्वेक्षण से पता चला कि क्लोरिन की वजह से अनेक रोग होते हैं अतः ग्रेनुलर एक्टिवेटेड कार्बन का प्रयोग कर जल स्वच्छ करने की पद्धति चल पड़ी है।

प्रदूषण के संभावित परिणामों का प्रभाव थल या वायुमण्डल तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि ध्वनि प्रदूषण, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण एवं सामाजिक प्रदूषण भी उग्र रूप धारण करते जा रहे

है। जनसंख्या के बढ़ने से अधिक आवास, भोजन, उद्योग, परिवहन आदि की आवश्यकताओं अनेक भयंकर रोग जैसे अंधापन, हृदय रोग, नेत्र रोग एवं कान रोगों में अनवरत वृद्धि होती जा रही है। वनों की बेतहाशा कटाई से पृथ्वी के ताप में वृद्धि हो रही है। जहरीली गैसों की मात्रा बढ़ती जा रही है, जिससे वायुमंडल के सभी तत्व अप्रभावित हुए बिना नही रह सकेंगे। संसाधनों के अविवेकी प्रयोग एवं दुरूपयोग ने मानव-जीवन के अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है।

कोयला जलने से सल्फर डाइ ऑक्साइड, कार्बन मोनोक्साइड, एल्डीहाइड, अलकतरा आदि के निकलने से वायुमण्डल विषाक्त होता है। धुआं, धूल, कार्बन, सीसा, कैडमियम, कार्बन डाईआक्साइड, कार्बन मोनोक्साइड, सल्फर डाईआक्साइड, नाइट्रिक आक्साइड इत्यादि मानव-जीवन को मुख्यतः प्रदूषित करने वाले तत्व हैं। सांस के द्वारा खून में कार्बन मोनोक्साइड प्रवेश कर उसे विषाक्त बना देती है। बच्चों और गर्भवतियों पर इसका घातक प्रभाव पड़ता है। पेट्रोल जलने से भी घातक गैस निकलती है, जो वायुमण्डल से मिलकर उसे विषैला बना देती है। कुछ कारखाने, जो जहरीले पदार्थ बनाते हैं, वायुमण्डल में विषैली गैस छोड़ते हैं। हवा यदि सीधी आकाश में उठ जाए तो प्रदूषण कम होगा, किन्तु कुहासा, बादल, धुंध आदि रहने पर वह धरती से सटे वायुमण्डल में फैलकर उसे प्राणघातक बना देती है।

आसमान में जब बादल छाए रहते हैं तो नाइट्रस ऑक्साइड, सल्फर डाईआक्साइड आदि गैसें पानी के साथ मिलकर सलफ्यूरिक अम्ल (तेजाब) बनाती है, जिससे तेजाबी वर्षा होती है। यह वर्षा पौधों को झुलसा देती हैं। प्राणियों पर भी इसका बुरा असर पड़ता है।

वैज्ञानिक इस प्रयास में जुटे हैं कि बड़े-बड़े औद्योगिक कल-कारखाने एवं स्वचालित वाहनों के प्रयोग में आने वाले ईंधन में से निकलने वाली गैसें आपस में क्रिया करके इस प्रकार के यौगिकों में परिवर्तित हो जाएं जो किसी भी क्षेत्र में पुनः उपयोग में लायी जा सकें। उद्योग की चिमनियों पर प्रेसिपिटेटर यंत्र लगाकर वायुमण्डल को प्रदूषण से बचाने का प्रयास किया जा रहा है। विकसित देशों में तो मोटरगाड़ियों की पाइपों में भी इस यंत्र को लगाने की हिदायत दी गई है। भारत जैसे प्रदूषण से ग्रसित देश में भी ऐसा ही यंत्र (प्रेसिपिटेटर) लगाने की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

औद्योगिक प्रदूषण रोकने के लिए जरूरी है कि नगरों के आस-पास से हटाकर उद्योगों को दूर ले जाया जाए। नगरों और कल-कारखानों के आस-पास खूब पेड़ पौधे लगाए जाएं, जो प्रदूषण करने वाले गैसों को हावी न होने दें। वनों को न केवल बचाया जाए, बल्कि उनका विस्तार किया जाए। पेड़ पौधे ऐसे लगाए जाएं, जिनका औद्योगिक और आर्थिक महत्व हो। वनों के बचाव के लिए उन पर आश्रित लोगों के लिए जलावन, खाद, चारे, खाद्यान्न आदि की वैकल्पिक व्यवस्था की जानी चाहिए।

वर्तमान और भावी मानव-जीवन को प्रदूषण के काले धुएं और जहरीले पानी से बचाने का उत्तरदायित्व हम सभी पर है। सच्चे नागरिक एवं देशवासियों की हैसियत से हमें अपनी लापरवाह आदत पर रोक लागानी होगी। नदी, तालाब और सड़क के किनारे मल-मूत्र-त्याग, घरों और अस्पताल के पास कचरों का ढेर लगाने से बाज आना पड़ेगा। भारतीय दंडसंहिता में ऐसी कार्रवाइयों को समेट कर सरकार इस दिशा में सार्थक कदम उठा सकती है। प्रदूषण की समस्या मानवीय कल्याण से जुड़ी है, अतः प्रदूषण से बचने के लिए प्राकृतिक साधनों के विवेकपूर्ण दोहन की प्रवृत्ति और प्रदूषण मुक्त प्रौद्योगिकी को अपनाना होगा।

देश की लगभग 70 प्रतिशत जनता गांवों में रहती है। गांवों में लकड़ी एवं गोबर की कोई कीमत नहीं होती, जिसका प्रयोग ग्रामीण नागरिक जलाने के काम में लाते हैं। गोबर जो एक उत्तम खाद बन जाता है, उसकी भी कोई कीमत ग्रामीणों के लिए नहीं होती। लकड़ी भी खाना बनाने के लिए प्रचुर मात्रा में प्रयोग में लायी जाती है। गांवों में बिजली की कमी के कारण मिट्टी का तेल रोशनी के रूप में प्रयोग किया जाता है। खाना चाहे लकड़ी, कोयले या मिट्टी के तेल को जलाकर बनाएं, यह तो बुनियादी आवश्यकता है, इसे नकारा नहीं जा सकता एवं इसके बिना काम भी नहीं चल सकता। यह अवश्य है कि इसके जलाने में किफायत अवश्य की जा सकती है।

वैज्ञानिकों ने ईंधन का सही दहन एवं उष्मा का सही परिचालन एवं वातावरण प्रदूषित कम हो, इसके लिए उन्नत चूल्हों का विकास व्यवहार में लाए जाने हेतु किया है। इसकी तापीय क्षमता बढ़ जाती है और धुएं की समस्या का निदान हो जाता है। उन्नत चूल्हे के इस्तेमाल के एक तरफ जहां ईंधन की भारी बचत होती है वहीं दूसरी तरफ धुएं से राहत, बर्तन, कपड़े एवं शरीर की सुरक्षा एवं समय की बचत होती है। साथ ही पर्यावरण संरक्षण एवं मनुष्य को आंख, कान के रोगों से बचाया जा सकता है एवं देशवासियों के स्वस्थ जीवन की कल्पना की जा सकती है।

बिहार ग्रामीण विकास संस्थान
हेहल, रांची 834005

वायु प्रदूषण – कारण और निदान

✍ डा. अधिकेश राय

हवा जीवन का आधार है। इसके बगैर मनुष्य का जीवन असंभव है। भारतीय धर्मग्रंथों में सृष्टि की उत्पत्ति के मूलभूत पांच तत्व कहे गये हैं जिनमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व आकाश हैं। इन तत्वों में वायु का स्थान सर्वोपरि है। आज मानव-जाति परमाणु विध्वंस के संकट से भले ही मुक्त हो परंतु वायु प्रदूषण के रूप में खतरा उसके सिर पर मंडराने लगा है। वह किसी परमाणु विध्वंस से कम नहीं है।

हजारों वर्ष पूर्व जब मनुष्य ने अग्नि की खोज की तब से ही जहरीली वायु ने वातावरण को प्रदूषित करना प्रारंभ कर दिया। किंतु इससे किसी भी प्रकार के दुष्परिणाम सामने नहीं आये। लगभग 400 वर्ष पूर्व पश्चिमी देशों की औद्योगिक व वैज्ञानिक क्रांति के कारण नई-नई तकनीकों का जन्म हुआ। कोयले से चलने वाले स्वचालित यंत्र, भाप का इंजन, पेट्रोल से चलने वाले इंजन व विद्युत के आविष्कार ने औद्योगीकरण की रफ्तार को तेज कर दिया। मनुष्य द्वारा प्रकृति से अनजाने में छेड़े गये इस युद्ध के परिणामस्वरूप वायु प्रदूषण के रूप में मृत्युमय आकाश निर्मित हो गया। सर्वप्रथम सन् 1661 में एक ब्रिटिश पत्रकार जान एब्लीन ने दुनिया को वायु प्रदूषण के खतरे से अवगत कराया।

वातावरण में संतुलन बनाये रखने के लिये मिश्रित गैसों में कार्बन डाइआक्साइड का अंश मात्र 0.03 प्रतिशत होना आवश्यक है। इस अंश के बिना हमारी धरती भी चंद्रमा की तरह ठंडी हो जाएगी। पृथ्वी की सतह से बिखरती उष्मा को लपककर यह गैस तापक्रम को जीवन रक्षा के काबिल यानि 15 डिग्री सेल्सियस के इर्द-गिर्द संतुलित करती है। लेकिन इसकी मात्रा बढ़ जाए तो धरती अंगारे की तरह तप सकती है। उद्योगों की चिमनियों से निकलने वाले धुएं, मोटर गाड़ियां, कोयला व तेल से चलने वाली भट्टियां, इस्पात के संयंत्र, पेट्रोल शोधक कारखाने आदि के धुएं व ईंधन जलने से वायुमंडल में सल्फर डाइआक्साइड, नाइट्रोजन के आक्साइड और कार्बन मोनो आक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है। इससे वायु प्रदूषण होता है। विकास के इस अंधे युग में वाहनों के यंत्रीकरण में वृद्धि होने के फलस्वरूप उनसे निकलने वाले धुएं व संसार के तमाम ताप बिजली घर अपनी भट्टियों में जो करोड़ों टन कोयला प्रतिदिन फूंक रहे हैं और उनकी चिमनियों से निकली तमाम गैसें मनुष्य की मृत्यु का पैगाम ला रही हैं। यह प्रदूषण भारत के लिये ही नहीं संसार के सभी देशों के लिये चुनौती बन चुका है।

वायु प्रदूषण के कारण मृत्युमय आकाश निर्मित हो गया है जिससे परिणामस्वरूप सन् 1952 में लंदन में एक भयंकर त्रासदी घटी जिसमें कोहरा व गंध के कारण चार हजार लोगों की मृत्यु हो गई। ऐसी ही त्रासदी अमरीका के न्यूयार्क शहर में भी घटी जिसमें 500 लोगों की मृत्यु हो गई। बढ़ते हुए गैस व धुएं के कारण 1992 में उत्तरी गोलार्ध में शीत ऋतु इतनी गर्म रही कि ध्रुवों में जमी बर्फ पिघलकर समुद्र का जल स्तर बढ़ाने लगी। वायु प्रदूषण के कारण ही ब्राजील की कुवाताओ घाटी को मृत्युघाटी कहा जाने लगा। विकसित देशों में वायु प्रदूषण के बढ़ते खतरे को देखकर ऐसे कारखानों को बंद कर दिया गया जिनसे जहरीली गैस पैदा होने की संभावनाएं थीं। अतः इन कंपनियों ने ऐसे देशों में इन कारखानों को लगाया जो इनके खतरे से अनजान थे जिसका उदाहरण भोपाल गैस त्रासदी के रूप में हमारे सामने आया।

औद्योगिक देश अपनी ऊर्जा की मांग पूरी करने के लिए कोयला व तेल जलाकर विकासशील देशों की तुलना में 10 गुनी कार्बन डाइआक्साइड हवा में झोकते हैं। भारत में विश्व की 16 प्रतिशत आबादी निवास करती है और इसकी ऊर्जा खपत विश्व की कुल खपत का केवल 3 प्रतिशत है। वातावरण में उत्सर्जित कुल कार्बन डाइआक्साइड में भारत का हिस्सा भी मात्र 3 प्रतिशत है जबकि अमरीका में विश्व की कुल आबादी का 5 प्रतिशत ही निवास करता है जो विश्व की एक चौथाई ऊर्जा का उपयोग करके वातावरण में 22 प्रतिशत कार्बन डाइआक्साइड उडेलता है। अमरीका दुनिया का सबसे धनी देश होने के साथ-साथ सबसे बड़ा प्रदूषक देश भी है।

हाल में हुए शोध सर्वेक्षणों से पता चला है कि कबाड़ हुए रेफ्रिजरेटरों से विसर्जित होने वाली गैस ओजोन परत में छेद की प्रमुख वजहों में से एक हैं। क्लोरोफ्लुओरो कार्बन (सी. एफ. सी.) का 30 के दशक में आविष्कार हुआ था तब इसे गैर जहरीली, अज्वलनशील व स्थाई स्वभाव वाली चमत्कारी गैस बताया गया था। इस गैस का उपयोग रेफ्रिजरेटरों, प्लास्टिक के फोम बनाने व एयर कंडीशनरों में होता है। सी. एफ. सी. का एक अणु ओजोन

के एक लाख अणुओं का नाश करने की क्षमता रखता है। ओजोन की परत में अब तक 8 प्रतिशत की क्षति हो चुकी है।

दंड लगाना होगा। क्योंकि महानगरों में प्रदूषण का स्तर ऊंचा है। एयरकंडीशनरों व रेफ्रिजरेटरों में सी. एफ. सी. का विकल्प खोजना होगा।

वृक्षारोपण द्वारा काफी हद तक वायुमंडल को शुद्ध करने में सफलता मिल सकती है। वृक्षों का हरा भाग (क्लोरोफिल) वायुमंडल से कार्बन डाइआक्साइड सोखकर उसे सूरज की रोशनी में पेड़ों के भोजन के रूप में परिवर्तित कर देता है। इसके स्थान पर शुद्ध आक्सीजन पेड़ों से निकलकर वायुमंडल में पहुंच जाती है। अनुमान है कि इस क्रिया के अंतर्गत पेड़ के हरे भाग का एक वर्गमीटर क्षेत्र एक घंटे में लगभग 4.75 से 5 ग्राम तक कार्बन डाई आक्साइड प्रयोग कर लेता है। पेड़-पौधे वायुमंडल से खतरनाक गैसों, धूल के कणों तथा धुएं आदि को भी अलग करते हैं। धुआं तथा धूल के कण पत्तियों पर चिपक जाते हैं जो बाद में वर्षा के पानी के साथ घुलकर भूमि पर गिर जाते हैं वृक्ष जहां एक ओर वायुप्रदूषण रोकने में सहायक होते हैं वहीं दूसरी ओर वे वायुमंडल के ताप को कम करते हैं। साधारण आकार की लगभग दो लाख पत्तियां 24 घंटे में अनुमानतः 54 से 64 लीटर तक पानी को वाष्प के रूप में वायुमंडल में डाल देती हैं। अतः जितने अधिक पेड़-पौधे होंगे उतनी अधिक उनके आसपास वातावरण में ठंडक होगी। अतः वृक्षारोपण द्वारा पीपल, महुआ, सागौन, शीशम, पापड़ी, आम, जामुन, बरगद, आदि के पेड़ लगाकर वातावरण को शुद्ध किया जा सकता है।

विभिन्न देशों द्वारा छोड़ी गयी ग्रीन हाउस गैसों व सी. एफ. सी. गैसों का उत्सर्जन।

गैस छोड़ने वाले देश	ग्रीन हाउस गैसों का उसर्जन (अरब टन कार्बन में)	सी. एफ. सी गैसों का उत्सर्जन (अरब मीट्रिक टन कार्बन में)
1. अमरीका	1000	350
2. सी. आई. एस. (पूर्व सोवियत संघ)	690	180
3. ब्राजील	610	16
4. चीन	380	32
5. भारत	230	0.7
6. जापान	220	100

स्रोत : विश्व संसाधन संस्थान, 1991

इन देशों द्वारा छोड़ी गयी गैसों के परिणामस्वरूप ग्रीन हाउस प्रभाव व ओजोन परत में छेद की स्थिति निर्मित हुई है। भारत ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन वाला 5वां देश है। इन गैसों के उत्सर्जन पर यदि नियंत्रण न किया गया तो सन् 2020 तक पृथ्वी का वातावरण इतना नीरस दिखाई देगा कि आकाश गहरा स्लेटी हो जायेगा जिसके चारों ओर सल्फर डाइआक्साइड के विषैले बादल फैले हुए होंगे, नाईट्रोजन डाइआक्साइड के धुंए की वजह से शाम जल्दी होगी। औद्योगिक नगरों में तो श्वास लेने तक के लिए शुद्ध हवा का टोटा पड़ने लगेगा और ऑक्सीजन मास्क लगाने की आवश्यकता होगी। इस कारण हमें प्रकृति से उतना ही लेना चाहिए, जितनी की जरूरत हो।

वायु प्रदूषण नियंत्रण उपाय :

वायु प्रदूषण का निरंतर विस्तार न केवल मानव जाति के लिए अपितु संपूर्ण जीव जगत के लिए भी संहारक हैं। जिस तत्परता के साथ देशों ने वायुमंडल में ओजोन की परत में खतरनाक छेद को बंद करने के लिए क्लोरोफ्लुओरो कार्बन के उत्सर्जन में कमी लाने की कोशिश हो रही है वह विश्व की उभरती चेतना का ठोस सबूत है। पृथ्वी को विनाश से बचाने के लिये ऊर्जा खपत के ढांचे में बदलाव लाने और कार्बन उत्सर्जन पर कर लगाने और यहां तक कि कार्बन बजट थोपने जैसे क्रांतिकारी कदमों की जरूरत है। बिजली के उत्पादन में कोयले की जगह गैस ईंधन का प्रयोग करना होगा। हद से ज्यादा कार्बन छोड़ने वाले वाहनों पर भारी

स्वच्छ वायु अधिनियमः

भारत सरकार द्वारा वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण अधिनियम 1981), वन संरक्षण अधिनियम 1986, वन (संरक्षक) अधिनियम 1980, प्रवर्तित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त भारत के संविधान के अनुच्छेद 47 व अनुच्छेद 48 में लोक स्वास्थ्य व पर्यावरण संरक्षण के बारे में प्रावधान है।

अधिनियम में राष्ट्रीय स्तर पर केंद्रीय मंडल के रूप में राज्यों और संघ शासित क्षेत्रों के स्तर पर स्वच्छ वायु प्रबंध संस्थानों के निर्माण का उपबंध हैं। केंद्रीय मंडल का यह प्राथमिक कर्तव्य है कि वायु की गुणवत्ता में सुधार करें तथा देशों में वायु प्रदूषण को रोके। राज्य सरकार मोटर यानों से होने वाले वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए अनुदेश जारी कर सकती है।

उसे प्रवेश करने, निरीक्षण करने जानकारी अभिप्राप्त करने तथा नमूने लेने की कतिपय शक्तियां प्राप्त हैं। अधिनियम में, प्रदूषण कर्ताओं को जिनमें शासन भी शामिल हैं, दंड देने की व्यवस्था है।

वायु प्रदूषण के इतने नियम बनने के बाद भी दिनों दिन वायु प्रदूषण निरंतर बढ़ता रहा है। ये नियम सिर्फ कागजी कार्यवाही हेतु आफिसों की मेजों में फाइलों तक सीमित हैं। इनके उचित क्रियान्वयन से वायु प्रदूषण पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

सहायक प्राध्यापक,
वाणिज्य विभाग,
शासकीय स्नातकोतर महाविद्यालय,
नरसिंहपुर (म. प्र.)

सफलता की कहानी

बैंक ऋण से कारोबार

दीपक गणवीर

श्री पृथ्वीराज सिंह पीथमपुर में एक साधारण मैकेनिक की हैसियत से फैक्टरी में कार्य करता था। इसके लिये उसे बेटमा से पीथमपुर रोजाना आना-जाना भी पड़ता था। यही नहीं, वह जहां कार्य करता था, वहां पर रोजनदारी के हिसाब से उसे मजदूरी मिलती थी, यानि जब कोई स्थायी कर्मचारी अवकाश पर जाता था, तब उसे उसकी जगह पर काम पर रख लिया जाता था और जब वह कर्मचारी अपने अवकाश से लौट आता था तब पृथ्वीराज की छुट्टी कर दी जाती थी। इस तरह अनिश्चितता का दौर उसकी जिंदगी का एक निश्चित हिस्सा बन गया था।

लेकिन पृथ्वीराज पढ़ा-लिखा नौजवान था, उसने एम. काम. किया था। भारत सरकार की आर्थिक नीतियों से संबंधित किसी समाचार पत्र से उसे जानकारी प्राप्त हुई कि वह राष्ट्रीयकृत बैंक से ऋण प्राप्त कर सकता है। इस संबंध में अधिक जानकारी के लिए वह स्थानीय बैंक ऑफ इंडिया की बेटमा शाखा में गया। वहां जाकर उसने बैंक के प्रबंधक एवं अन्य सभी संबंधित अधिकारियों और कर्मचारियों से आवश्यक जानकारी लेकर ऋण प्राप्ति के लिये अपना आवेदन पत्र प्रस्तुत कर दिया। बैंक ने उसे बीस हजार रुपये का ऋण मंजूर कर दिया। इस राशि से उसने आटो पार्ट्स की एक छोटी सी दुकान डाल दी, धीरे-धीरे उसकी दुकान चल निकली और आज वह हर महीने लगभग तीन से चार हजार रुपये कमा रहा है और उसके परिवार का खर्च अच्छी तरह चल रहा है।

अपनी इस सफलता का श्रेय पृथ्वीराज स्थानीय बैंक को देता है, जहां से उसे ऋण प्राप्त हो सका। इसके अतिरिक्त, वह भारत सरकार की नई आर्थिक नीतियों की भी प्रशंसा करता है, जिनके आधार पर उसे यह ऋण सुलभ हो सका और वह इस स्थिति में आ सका कि वह न सिर्फ अपने परिवार का पालन पोषण ही करने में समर्थ नहीं हुआ, बल्कि समाज में एक प्रतिष्ठित नागरिक की हैसियत से जीवन जीने का अवसर भी उसे प्राप्त हुआ।

क्षेत्रीय प्रचार अधिकारी,
इंदौर (म. प्र.)

रोगों का दुश्मन नीबू

✍ डॉ. नीलिमा कुंवर

नीबू गुणों की खान है। यह फल सुलभ भी है। आसानी से आंगनबाड़ी में भी बोया जा सकता है। गर्मियों में नीबू उपयोगिता की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। नीबू का उपयोग आन्तरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार से किया जाता है।

नीबू में रासायनिक तत्व प्रचुर मात्रा में होते हैं। इसके रस में प्रोटीन, वसा कार्बोज, विटामिन ए, बी, सी, पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें पोटेशियम, मैग्नेशियम, थायमिन क्लोरोपीन आदि खनिज तत्व पाये जाते हैं। इसमें अम्लरोधी खनिज तत्वों की पर्याप्त मात्रा होती है। इसमें पाये जाने वाले रासायनिक तत्व शरीर में विषाक्त और दूषित पदार्थों को बाहर निकालते हैं। रक्त को शुद्ध करते हैं तथा त्वचा को कान्ति प्रदान करते हैं। गर्मियों में उदर रोग सामान्य बात है। नीबू का प्रतिदिन भोजन के साथ प्रयोग करने से पाचन शक्ति ठीक रहती है। भोजन सरलता से पच जाता है। पेट में गैस, जलन आदि उत्पन्न नहीं हो पाते। यदि कब्ज हो तो एक गिलास पानी में नीबू का रस मिलाकर पिया जा सकता है। अजीर्ण, मंदाग्नि, पतले दस्त, पेचिश, उल्टी आदि रोगों में नीबू को गरम करके नमक काली मिर्च लगाकर चूसा जा सकता है या पानी में मिला कर पिया जा सकता है। हैजे के रोगी को पानी उबाल कर ठंडा करके उसमें नीबू का रस मिला कर पिलाना चाहिए। इस रोग में नीबू, प्याज तथा पोदीने का रस मिला कर पीने से बहुत लाभ होता है। हमारे शरीर में मूत्रीय अम्ल अक्सर इक्ट्ठा होकर उत्पात मचाता है। मांस, चाय तथा मादक पदार्थों या वसा का अधिक सेवन करने से अपना मूत्रीय अम्ल शरीर में आलस्य लाता है तथा मूत्र में पीलापन बढ़ता है। नीबू के रस को गरम जल में सुबह पीने से यह मूत्रीय अम्ल निकल जाता है।

जुकाम होने पर नीबू को गरम जल में निचोड़ कर पीने से बहुत लाभ होता है। गर्मियों में नीबू की शिकंजी प्रतिदिन ठंडे पेय के रूप में पी जा सकती है। शिकजी के सेवन से घबराहट, जी मिचलाना, सिर दर्द, अधिक पसीना आना, थकान महसूस होना आदि से भी फायदा होता है। मोटापा दूर करने के लिए प्रतिदिन प्रातः एक गिलास पानी नीबू का रस तथा शहद मिलाकर पीने से अनावश्यक चर्बी छट जाती है।

नीबू का अचार पेट के अनेक रोगों जैसे अफारा, गड़बड़ाहट, गैस बनना, जिगर और तिल्ली की खराबी आदि में शीघ्र आराम पहुंचाता है। अब नीबू के कुछ बाह्य उपयोग भी देखिए। सिर में खुश्की तथा खुजली होने पर या बाल झड़ने की अवस्था में नीबू का रस सिर में मलने से फायदा होता है। नीबू के रस में थोड़ा सा पानी मिला कर सिर धोने से साबुन की आवश्यकता नहीं रहती है। नीबू के रस में अरहर की दाल पीस कर सिर में लगाने से बाल बढ़ते हैं। गर्मियों में नहाने के पानी में नीबू का रस डालने से या नीबू के छिलके डाल कर नहाने से शरीर की दुर्गन्ध तथा सारा मैल दूर होता है। गर्मी कम लगती है। नीबू को ग्लीसरीन तथा गुलाबजल और गोले या जैतून के तेल में मिलाकर खुश्क चमड़ी पर मलने से चमड़ी की खुश्की और खुजली रोग दूर हो जाती है। दांतों के लिए नीबू का प्रयोग अच्छा रहता है। मसूड़ों में खून आने पर नीबू के रस का कुल्ला फायदा करता है। पायरिया में तिल के तेल को 10 तोला लेकर उसमें दो तोला नीबू का रस, आधा तोला कपूर तथा थोड़ा सा सेंधा नमक मिलाकर लगाते रहने से लाभ होता है।

इसके अतिरिक्त नीबू में और भी अनेक गुण हैं। इसके गुणों को देखते हुए आप इसे आंगनबाड़ी में उगा सकते हैं।

गृह विज्ञान विभाग,
चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं
प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय,
कानपुर–208002

जहरीले वातावरण में पनपता जीवन

✍ डॉ एम. के. राय

विश्व में आज कोई भी देश प्रदूषण के खतरों एवं कुप्रभावों से नहीं बच सकता है। सामान्यतः शुद्ध वातावरण में अशुद्ध तत्वों के मिल जाने को ही प्रदूषण कहते हैं। हमारे आसपास के वातावरण में प्रत्येक गैस का अनुपात निश्चित होता है, यदि यह अनुपात बिगड़ जाता है तो पर्यावरण प्रदूषित माना जाता है। मानव और प्रकृति में एक ताल-मेल होता है। सृष्टि के प्रारंभ में प्रकृति घने वनों से आच्छादित थी। वातावरण बहुत ही मनोरम था, किंतु मानव ने इस दुनिया में आते ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति को नष्ट करना आरंभ कर दिया। औद्योगिकरण के साथ संपूर्ण ब्रह्मांड का वातावरण तेजी से बिगड़ने लगा। आज तो स्थिति इतनी भयावह है कि हमारे जीवन के तीनों अमूल्य स्रोत जल, थल और हवा प्रदूषित हो गये हैं। मनुष्य प्रकृति की मित्रता को भूलकर उसका दोहन करने लगा है। परिणामस्वरूप बाढ़, सूखा, अतिवृष्टि, भूकंप, ओजोन तह का पतला होना तथा अम्लीय वर्षा जैसे भयानक प्रकोपों का सामना करना पड़ रहा है। ये आपदायें मनुष्य के स्वयं के द्वारा किये गये कृत्यों का फल है। हम कितने ही बड़े बांधों का निर्माण कर लें और कितने ही उद्योग क्यों न स्थापित कर लें, हमारी ये उपलब्धियां तब तक निरर्थक हैं - जब तक हम प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित न करें।

अब प्रश्न उठता है कि प्रदूषण क्यों बढ़ रहा है? सच पूछिये तो प्रदूषण ''मानव निर्मित समस्या'' है। प्रदूषण मुख्य रूप से तीन प्रकार का होता है - वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण और मृदा प्रदूषण। इसके अतिरिक्त शोर प्रदूषण और रेडियो एक्टिव प्रदूषण भी होते हैं।

वायु में नाईट्रोजन, ऑक्सीजन, कार्बन डाइक्साइड, कार्बन मोनाक्साइड आदि प्रमुख हैं। इनमें सबका अनुपात निश्चित होता है। यदि यह अनुपात बिगड़ जाये तो प्रदूषण हो जाता है।

आज हमारे सामने कई ऐसे उदाहरण हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि वायु प्रदूषण कितना खतरनाक है। वास्तव में, हम विष भरे वातावरण में जी रहे हैं। मंदसौर के सीमेंट के कारखाने में बेहद प्रदूषण बढ़ रहा है। यहां की वनस्पति पर कारखानों से निकलने वाली धूल और राख का प्रभाव पड़ रहा है – जिससे वनस्पतियों की संख्या निरंतर कम होती जा रही है। पत्तियों पर धूल और राख के जमने से प्रकाश संश्लेषण (पौधों द्वारा भोजन बनाने की क्रिया) ठीक से नहीं हो पाता। ग्रामीणों का मानना है कि सीमेंट फैक्ट्री के कुप्रभाव से पानी का स्तर भी गिरा है। धीरे-धीरे भूमि के बंजर हो जाने की संभावना है। आजकल वहां 400 फुट तक बोर करवा लेने पर भी पानी नहीं निकलता।

विभिन्न प्रकार के रसायनों के छिड़काव से भी प्रदूषण बढ़ रहा है। उदाहरण के लिए डी. डी. टी. के छिड़काव से शरीर पर घातक प्रभाव पड़ रहे हैं। दैनिक जीवन में उपयोग में आने वाले पदार्थों में डी. डी. टी. की मात्रा अधिक हो गयी है।

भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद के अनुसार हमारे दैनिक जीवन में उपयोग में आने वाले पदार्थों जैसे दूध, मक्खन और अनाज में जहर मिला हुआ है। न केवल डी. डी. टी. बल्कि बी. एच. सी., बेंजीन हैक्सा क्लोराइड भी हमारे खाद्य पदार्थों में अप्रत्यक्ष रूप से मिल जाते हैं। परिषद ने 12 राज्यों के सर्वेक्षण के दौरान पाया कि 87 प्रतिशत दूध के नमूनों में डी. डी. टी. और बी. एच. सी. पाये गये।

भोपाल में हुई मिक गैस त्रासदी की घटना हमें चेतावनी देती है कि जीवनाशक रसायनों का प्रयोग हमेशा के लिए बंद कर देना चाहिए। आंकड़ों से पता चलता है कि मिथाइल आइसो सायनाइड के जहर से लगभग 30,000 लोगों की जान गयी थी। जानवरों की संख्या के बारे में तो अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इस गैस के प्रभाव से लगभग 600 माताओं ने मृत बच्चों को जन्म दिया।

हमारे दैनिक जीवन में उपयोग में आने वाले रेफ्रिजरेटर या इत्रों की क्लोरोफ्लोरो गैसों से स्ट्रेटोस्फीयर में पाई जाने वाली ओजोन गैस की तह पतली होने लगी है और कुछ स्थानों में छेद भी हो गया है जिससे सूर्य से निकलने वाली परा बैंगनी किरणें पृथ्वी तक पहुंचने लगी हैं। परा बैंगनी किरणों के दुष्प्रभाव से पृथ्वी

का तापक्रम तेजी से बढ़ रहा है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या हम बगैर सी. एफ. सी. के प्रयोग के रेफ्रिजरेटर बना सकते हैं। वास्तव में इसमें हमें वक्त लगेगा। इसलिये हमारे पर्यावरण मंत्री श्री कमलनाथ ने विकसित देशों से मांग की है कि वे हमें पर्याप्त आर्थिक सहायता और समय दें ताकि हम बिना सी. एफ. सी. के रेफ्रिजरेटर बना सकें। हमारे पर्यावरण मंत्री का यह भी मानना है कि तृतीय विश्व में पायी जाने वाली जैव-विविधता से बनने वाले उत्पादों का विकसित देश उपयोग करते हैं, इसलिये उन्हें विकासशील देशों को आर्थिक सहायता प्रदान करनी चाहिये।

हम सिन्थैटिक रासायनिक इत्रों के स्थान पर पुष्पों से प्राप्त प्राकृतिक इत्रों का प्रयोग कर सकते हैं जिससे ओजोन को बचाया जा सके।

आजकल एक नया पर्यावरणीय प्रभाव सामने आया है – जिसे हम 'ग्रीन हाउस इफैक्ट' कहते हैं। जिस प्रकार हरे कांच के घर में सूर्य की रोशनी तो प्रवेश कर जाती है, किंतु उससे उत्पन्न होने वाली गर्मी बाहर नहीं निकल पाती। उसी प्रकार हमारी पृथ्वी भी है कार्बन डाइक्साइड रूपी कांच के घेरे में पर बैंगनी किरणें प्रवेश तो कर जाती हैं, परंतु उससे उत्पन्न होने वाला ताप घेरे से बाहर नहीं निकल पाता। संयुक्त राष्ट्रसंघ पर्यावरण कार्यक्रम की एक ताजी रपट के अनुसार 5.7 अरब टन कार्बन डाइक्साइड वायुमंडल को विषैला बना रही है। दरअसल कार्बनडाइक्साइड की मात्रा बढ़ने का कारण जंगलों का सफाया करना और जनसंख्या की वृद्धि है। हमारे देश की कुल 32 करोड़ 90 लाख हेक्टेयर भूमि में से 17 करोड़ 50 लाख हेक्टेयर जमीन बीमार है। एक ओर तो हम प्रत्येक वर्ष एक आस्ट्रेलिया के बराबर जनसंख्या बढ़ा रहे हैं, वहीं दूसरी ओर रसायनों के कुप्रभाव से विष भरे भविष्य की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

नाईट्रोजन और सल्फर की मात्रा अधिक होने पर भी खतरा बढ़ा है। अब जीवनदायिनी नाइट्रोजन मौत के बादल बन मंडराने लगी है। नाईट्रोजन डाइक्साइड और सल्फर डाइक्साइड के कारण नाइट्रिक और सल्फयूरिक अम्ल का निर्माण होता है। दोनों गैस वातावरण से जल की मात्रा लेती हैं और तेजाब बन बरसती हैं। तेजाबी वर्षा का प्रभाव पाश्चात्य देशों जैसे नार्वे, स्वीडन, फिनलैंड, अमरीका आदि पर अधिक है। किंतु ऐसा कदापि नहीं मानना चाहिए कि अम्लीय वर्षा का प्रभाव भारत में नहीं है। भारत के चार बड़े नगर कलकत्ता, बंबई, दिल्ली और मद्रास में अम्लीकरण के प्रमाण मिले हैं।

वायु प्रदूषण के कारण अनेक प्रकार के फेफड़ों के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। सबसे अधिक प्रभाव तो फेफड़ों पर ही पड़ता है। जल प्रदूषण और भी खतरनाक है। जल बिना जीवन कहां? संसार में तीन चौथाई भाग में पानी है, परंतु हम पीने योग्य पानी के लिए भी तरस जाते हैं। पीने के अतिरिक्त पानी की आवश्यकता खाद्यान्न, ऊर्जा के उत्पादन तथा अन्य उद्योगों में भी होती है। सच तो यह है कि विश्व के कुल जल का 97 प्रतिशत भाग समुद्र में पाया जाता है जो खारापन लिये हुए है। तीन प्रतिशत का अधिकांश भाग भूमिगत एवं वाष्प के रूप में है। केवल 0.6 प्रतिशत जल ही पीने योग्य माना गया है।

जल प्रदूषण का कारण मल मूत्र, औद्योगिक अपशिष्ट, रासायनिक एवं विषैले पदार्थ, तेल प्रदूषण, कीट नाशकों का विचारहीन प्रयोग, रेडियो धर्मी तत्वों के द्वारा होने वाला प्रदूषण, थर्मल प्रदूषण आदि है।

एक रिपोर्ट के अनुसार हमारे देश की पवित्र माने जाने वाली गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, कावेरी, दामोदर, कृष्णा आदि 18 नदियां प्रदूषित हो चुकी है। गंगा नदी में तो जल सुधार योजना शुरू की जा चुकी है। सैंट्रल गंगा अथार्टी की स्थापना भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्री राजीव गांधी ने की थी। इसमें हमें काफी हद तक सफलता भी मिली है।

जल प्रदूषण का असर मानव स्वास्थ्य पर अधिक पड़ता है। हैजा, पेचिश, पोलियो, पीलिया और पेट के अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जल प्रदूषण का दुष्प्रभाव केवल मनुष्य पर ही नहीं पड़ता वरन जलीय पौधों और जीव जंतुओं पर भी जल प्रदूषण का प्रभाव पड़ता है। खाड़ी युद्ध के तेल प्रदूषण से कई मछलियां एवं पक्षी मर गये थे जो मछलियां खाते थे।

बढ़ते प्रदूषण को रोकने और जीवन को सुरक्षित करने के लिये हमें प्रकृति के करीब आना होगा। उसके साथ हमें मित्रता के संबंध स्थापित करने होंगे। हमें सिद्ध करना होगा कि प्रकृति हमारी सहचरी है। हम जितना पृथ्वी का दोहन करते हैं, उतना ही उसे वापस करना होगा। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का मानना था कि "प्रकृति के पास सबकी आवश्यकताएं पूरा करने के लिये पर्याप्त है, लेकिन किसी भी एक व्यक्ति के लोभ-लालच की तुष्टि के लिये कुछ भी नहीं है।" गांधी-विचार में मनुष्य और प्रकृति के स्वस्थ

एवं सहयोगी संबंध का नया और मूल दर्शन मौजूद है। गांधी जी के सिद्धांतों पर चलकर हम प्रदूषण से काफी हद तक दूर रह सकते हैं। गांधी जी ने आज की औद्योगिक संस्कृति को शैतानी संस्कृति की संज्ञा दी थी। उनके अनुसार-"औद्योगिक संस्कृति एक रोग है। उसमें आवश्यकताओं की एक ऐसी पागलपन भरी स्पर्धा प्रारंभ होती है जिसका अंत पश्चाताप में होता है।" गांधी जी के विचारों में फलदार पेड़, खेती और पशुपालन का जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं में विशेष महत्व था। हमें बड़े बांधों से हटकर छोटे बांधों पर जोर देना चाहिए। पुराने तालाबों को सुधारकर उनका पुनरुपयोग किया जा सकता है। गांधी शांति प्रतिष्ठान के ख्यातिप्राप्त विद्वान पर्यावरणविद श्री अनुपम मिश्र ने तालाबों की व्यवस्था और उनके उपयोग पर जोर दिया है। उन्होंने "तालाब आज भी खरे हैं" नामक पुस्तक में इस बात को उजागर किया है।

जिस आयुर्वेद की नींव भारत में पड़ी थी, वह भारत में ही उपेक्षित हो गया था। हम पश्चिमी दौड़ में खो गये है और एलोपैथी का उपयोग करने लगे हैं। परंतु जब पाश्चात्य देश—जर्मनी, अमरीका, इंग्लैंड आदि आयुर्वेद की ओर आकर्षित हुए तो हमने अपनी धरोहर का मोल समझा किंतु आज भी हमारे देश से करोड़ों रुपयों की जड़ी-बूटियों विदेश जाती हैं। औषधि के क्षेत्र में हमें प्राकृतिक जड़ी-बूटियों पर निर्भर रहना होगा। केरल के डॉ० केशवन का कहना है कि हमारे देश में एड्स दूर करने के लिये वनस्पतियां हैं। ये वनस्पतियां सौभाग्य से हमारे सतपुड़ा अंचल में विशेष रूप से पातालकोट, तामिया और पचमढ़ी में मौजूद हैं। जड़ी-बूटियों के प्रयोग से मानव स्वास्थ्य पर बुरा असर भी नहीं पड़ता।

हमें कीटनाशकों और कवकनाशकों का समुचित प्रयोग करना होगा। कीटनाशकों के अंधा-धुंध प्रयोग से किसानों के मित्र केंचुए मर जाते हैं। इनका घातक असर मनुष्य पर भी पड़ता है।

हमारी राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं से केवल ऐसे शोध ही नहीं होने चाहिए कि अमुक विषैला पदार्थ हवा में है और अमुक तत्व पानी को विषैला कर रहा है, बल्कि उनके सुधारों के उपाय भी खोजे जाने चाहिए। गाजर घास विषैली है ऐसा कहने पर काम नहीं चलेगा बल्कि उसके उपयोगी गुणों पर भी शोध करनी चाहिए।

हम लोग पश्चिमी खोजों पर आश्रित है। जैसे पश्चिम की शोध कहती है, हम भी वही करने लगते हैं। पश्चिमी देशों में कारों में "थ्री वे कनवर्टर" लगाया जाता है — जिससे प्रदूषण कम होता है। हमारे यहां भी यह बात फैली है और लोग "थ्री वे कनवर्टर" की बात करने लगे। पर अधिक अच्छा होता कि हम कार का उपयोग कम से कम करें तो प्रदूषण स्वयं ही कम हो जायेगा। बड़े-बड़े उद्योगों के स्थान पर छोटे-छोटे उद्योग विकसित करने चाहिए। कुटीर उद्योगों पर जोर देना चाहिए।

स्वस्थ जीवन और सुखी समाज की पुनर्स्थापना के लिए हमें प्राकृतिक जीवन ही अपनाना होगा। सबसे आधारभूत बात है इस ओर सोचने की। लोगों के पास यह सब सोचने का समय ही नहीं है। यह देखा गया है कि लोग जागरूक भी कम हैं। यह जरूर है कि इस दशक में जागरूकता बढ़ी है, किंतु लोग सुधारात्मक दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहते। यहां तक देखा गया है कि लोग स्वयंसेवी संस्थानों के द्वारा रोपित पौधों को भी उखाड़ फेंकते हैं। उनका मानना है कि फलदार वृक्ष लगाने पर लोग घर में पेड़ों के बहाने पत्थर बरसायेंगे। यह जागरूकता की कमी को दर्शाता है।

लोगों में चेतना बचपन से ही उत्पन्न करनी होगी। अंत में कहा जा सकता है कि पर्यावरण शिक्षा के माध्यम से लोगों में चेतना उत्पन्न कर, पुरानी प्रकृति-मित्र पद्धतियों को अपनाकर हम स्वस्थ पर्यावरण की स्थापना का प्रयास कर सकते हैं।

समन्वयक, पर्यावरण संरक्षण कार्यक्रम,
डेनियल्सन कालेज, छिंदवाड़ा - 480001 (म० प्र०)

जरूरत है प्राकृतिक संसाधन रक्षा सेना की

✍ विनय दीक्षित

जनसंख्या में वृद्धि तथा आर्थिक, औद्योगिक और नगरीय विकास में तेजी आने के साथ-साथ देश में प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों पर भी तरह-तरह के संकट आने लगे हैं। प्रकृति और मनुष्य के बीच परस्पर निर्भरता के संबंध हैं। लेकिन आज मनुष्य ने अपने स्वार्थ और अपनी मजबूरी में प्राकृतिक संसाधनों का इतनी बेरहमी से इस्तेमाल करना शुरू कर दिया है कि यह निर्भरता एक पक्षीय हो गई है और इससे प्राकृतिक संतुलन बिगड़ गया है। प्रकृति को नुकसान पहुंचा कर मनुष्य ने परोक्ष रूप से अपना ही नुकसान किया है। आज भूमि, जल और वायु सभी प्रदूषित और क्षतिग्रस्त है।

वनों की कटाई, जल संसाधनों की पवित्रता की उपेक्षा और वायुमंडल को निरंतर प्रदूषित करते रहने के कारण आज मानव जीवन पर तरह-तरह से संकट उत्पन्न होने लगे हैं। मानव-पर्यावरणीय संबंधों और अवस्थाओं को दूरावस्थाओं तक लाने वाले कारण नये या अज्ञात नहीं हैं। मनुष्य ने पिछले दशकों में आर्थिक, भौतिक तथा सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में बहुत अधिक प्रगति की है। तथापि अब यह सर्वत्र अनुभव किया जाने लगा है कि इस प्रगति का मूल्य हमने पर्यावरण की समस्याएं उत्पन्न करके चुकाई है जो कि जल और वायु प्रदूषण, घटते वन जीवन, कीटनाशकों द्वारा विषकरण, विकिरण के दुष्प्रभावों, प्राकृतिक संपदा का दुरुपयोग तथा जनसंख्या में असामान्य वृद्धि के रूप में दिखती है। वन चूंकि प्राकृतिक संतुलन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं अतः इसमें कोई संशय नहीं कि उनका विनाश प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हमारे पर्यावरण को प्रभावित करता ही है। भूमि का कटाव, भूस्खलन, प्रलयंकारी बाढ़ें, भयावह सूखे, वर्षा में कमी और तापमान में बदलाव, पर्यावरण प्रदूषण इत्यादि वन विनाश के ही परिणाम हैं।

निजी और सामुदायिक उपयोग के लिए वनों के विनाश के अलावा मनुष्य ने औद्योगिक और तकनीकी विकास का लाभ उठाते हुए जल और वायु को भी बुरी तरह प्रदूषित कर अपने लिए नये नये खतरे पैदा कर दिए हैं। वैज्ञानिकों का मत है कि आज प्रकृति के सामने ओजोन परत में छिद्र होने के खतरे पैदा हो गये हैं, कई महानगरों में आक्सीजन के स्तर में कमी आ रही है। कार्बन डाईआक्साईड और अन्य निष्क्रिय गैसें आक्सीजन पर बुरा प्रभाव डाल रही हैं, जो मानव स्वास्थ्य के लिए घातक हैं।

एक अनुमान है कि इस सदी में भारत की जनसंख्या एक अरब हो जायेगी और जनसंख्या वृद्धि की नियंत्रित दर के बावजूद अगले 40 वर्षों में हमारी जनसंख्या दो अरब तक होगी।

आज जब हम एक अरब से भी कम हैं, तब देश में गरीबी, बेरोजगारी जैसी समस्याएं निरंतर गंभीर हो रही हैं। खेद का विषय है कि मानव प्रतिभा के उपयोग के अवसरों का उचित दोहन न होने के कारण ये समस्याएं दिनों दिन गंभीर हो रही हैं और भविष्य में इनके गंभीर होने का खतरा बढ़ता ही जा रहा है।

आज जरूरत इस बात की है कि हम प्रकृति और मानव के बीच तालमेल स्थापित करने की दिशा में एक बार फिर से सोचें। लेकिन हमारे सोच का नजरिया दोनों में परस्पर निर्भरता के आधार पर तालमेल का होना चाहिए। बिना प्रकृति के मानव का अस्तित्व संभव नहीं है और मानव विहिन प्रकृति निष्प्रभाव ही है।

आज विपुल जनसंख्या होते हुए भी एक ओर बेरोजगारी और गरीबी की समस्या है, तो दूसरी और निरंतर प्राकृतिक क्षय की। क्योंकि मनुष्य ने प्रकृति की रक्षा का काम अपने स्वार्थ के लिए आधे-अधूरे ढंग से ही किया या फिर जो भी काम किये केवल अपने अल्पकालिक स्वार्थ के लिए।

यह आश्चर्य का विषय है कि हमारे देश में एक ओर तो विपुल जल संसाधन व्यर्थ ही बर्बाद हो रहे हैं, दूसरी ओर उपजाऊ भूमि सूखे के चपेट में अनुपजाऊ पड़ी रह जाती है। अतः जल संसाधनों के व्यापक राष्ट्रहित में उपयोग के लिए भारतीय नदियों का एक एकीकृत ''जलग्रिड'' बनाया जाये। लगभग 35 वर्ष पूर्व देश की उत्तर, मध्य और दक्षिण की नदियों को जोड़ने के लिए गंगा-कावेरी नदी ग्रिड बनाने की एक योजना काफी चर्चित रही। किंतु राज्यों के अल्पकालिक स्वार्थ और हितों के कारण राष्ट्रीय हित की यह योजना अनेक बार केवल चर्चाओं तक ही सीमित रही। यदि ऐसी किसी योजना पर कार्य होता है तो इससे देश की बेरोजगारी, भूख और आर्थिक पिछड़ेपन जैसी समस्याओं से स्थायी छुटकारा पाने

की दिशा में एक सार्थक काम हो सकता है।

भारत में तेजी से वन्य क्षेत्र घटता जा रहा है। जंगलों और पहाड़ों में हरे-भरे वृक्षों की जगह आज ऊसर जमीन नजर आती है। वनों के विनाश के प्रति आज जनसाधरण में जागरूकता तो आ गई है, लेकिन इस जागरूकता का लाभ सही दिशा और सही नियोजन से ही मिल सकता है। सरकार के गलत नियोजन के कारण सदियों से वनों से जुड़े आदिवासी-वनवासी आज आधुनिकता के नाम पर प्रकृति से अलग होते जा रहे हैं। विकास के नाम पर उनकी हालत सुधरने की बजाय बिगड़ती जा रही है। आदिवासी क्षेत्रों में परंपरागत उपयोगी वृक्षों के स्थान पर शीघ्र औद्योगिक लाभ देने वाले पौधों का रोपण करने से आदिवासी जनता के सामने कई आर्थिक व सामाजिक प्रश्न खड़े हो गये हैं। शहरों और गांवों में वनीकरण के नाम पर जिस प्रकार से शीघ्र हरियाली देने वाले वृक्ष लगाये जा रहे हैं उनसे जनता को और पर्यावरण को विशेष लाभ नहीं होते हैं। परपंरागतरूप से आम, नीम, पीपल, वट एवं अन्य फलदार और छायादार वृक्ष लगाये जाते थे और उन्हें भरपूर संरक्षण दिया जाता था। इन वृक्षों से फल फूल मिलने के कारण खाद्य समस्या के समाधान में भी मदद मिलती थी। लेकिन आज इन वृक्षों की कमी होती जा रही है।

शासन के नियमों और कानूनों के कारण आज वन संरक्षण एक जटिल समस्या है। ऊसर और उजाड़ भूमि में गैर सरकारी एजेंसी द्वारा वन लगाना संभव नहीं है। जरूरत इस बात की है कि वृक्षारोपण और वन संरक्षण के लिए उदार और प्रोत्साहनकारी नियम तथा नीतियां बनें। आज देश में लाखों एकड़ अनुपजाऊ भूमि बिना किसी उपयोग के पड़ी हुई है। अतः इस भूमि का उपयोग करने के लिए व्यापक पैमाने पर वृक्षारोपण करने का कार्यक्रम बनाया जाना चाहिए। इससे बेरोजगारी की समस्या हल करने में भी मदद मिलेगी।

देश की नदियां आज गंभीर जल प्रदूषण की समस्या से ग्रस्त हैं। नदियों के अलावा अन्य सतहीजल स्रोत भी प्रदूषण से ग्रस्त हैं। नदियों और जल स्रोतों को प्रदूषण मुक्त करने और उनकी रक्षा करने के लिए आज जो योजनाएं बन रही हैं वे दीर्घकालिक और स्थायी होनी चाहिए।

प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा और उनके संतुलित दोहन के लिए तथा मनुष्य और प्रकृति में परस्पर निर्भरता स्थापित करने के लिए ''प्राकृतिक संसाधन रक्षा सेना'' जैसे अर्ध सैनिक, स्वयं सेवी संगठन की स्थापना का सुझाव अपने आप में नया नहीं है। बहुत समय पहले समाजवादी नेता डॉ० राममनोहर लोहिया और उनके बाद श्री जयप्रकाश नारायण तथा चौधरी चरण सिंह ने भूमि सेना गठित करने के कार्यक्रम पर जोर दिया था। आज समय की मांग और बढ़ती हुई समस्याओं के समाधान के लिए इसी कार्यक्रम को एक बड़े रूप में चलाने की जरूरत है। बेरोजगार, मेहनती युवक-युवतियों की सहायता से ऐसे संगठन बनाये जाने चाहिए, जो पूर्ण अनुशासन में रहकर प्रकृति की रक्षा के लिए एक सैनिक की तरह काम कर सकें। सेना का सुझाव इसलिए भी जरूरी है कि आज हमारे देश में गैर जिम्मेवार श्रम संगठनों ने कर्तव्यों से अधिक अधिकारों और सुविधाओं को महत्व देना अपना काम समझ रखा है। इसलिए प्रकृति को बचाने और उसे मानव हित में लाभकारी उपयोग करने के लिए ''प्राकृतिक संसाधन रक्षा सेना'' जैसे संगठन की स्थापना आज मनुष्य और प्रकृति के हित में है।

यह सेना वृक्षारोपण, वनों की रक्षा, उनके हितकारी दोहन, ऊसर और उजाड़ भूमि को उपयोगी बनाने, जल संसाधनों की रक्षा, उन्हें प्रदूषण से मुक्त कराने और उनके उपयोग को सुनियोजित करने जैसे काम हाथ में ले सकती है। यह इतना बड़ा काम है कि इससे लाखों बेरोजगारों को पर्याप्त लाभकारी रोजगार भी मिल सकेगा और उनके श्रम से देश के प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा तथा उनका उचित दोहन भी किया जा सकेगा।

प्राकृतिक संसाधन रक्षा सेना का विचार आज की परिस्थितियों में अनेक व्यावहारिक संशोधनों और नवीन कारगर योजनाओं के बाद ही पूर्ण होगा। अभी तो यह विचार केवल एक शुरूआत है। जरूरत इस बात की है कि इस विचार पर सरकार और समाज तथा सचेतन विद्वान पर सोचे, विचारें और इसे मूर्त रूप देने के लिए एक सार्थक प्रयास करें।

ई-188/2, प्रोफेसर कॉलोनी,
भोपाल 4622002

वृक्षारोपण : आवश्यकता और फायदे

✍ धनंजय कुमार मिश्र

पर्यावरण को संतुलित रखने के लिए वृक्षारोपण की अह्म भूमिका है। पर्यावरणविदों के अनुसार पर्यावरणीय संतुलन के लिए सकल भू-भाग के एक तिहाई भू-क्षेत्र पर वनों का होना अत्यावश्यक है। यही वजह है कि सरकार ने हरे वृक्षों की कटाई को कानूनी अपराध करार देते हुए इस पर पाबंदी लगा दी है। वृक्षारोपण सप्ताह मनाकर आज भारत में विभिन्न संगठन चाहे वे सामाजिक, शैक्षिक या राजनीतिक हों हर वर्ष वृक्ष लगाने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दे रहे हैं। अगर आज हम इसकी उपयोगिता पर अपनी नजर दौड़ाएं तो पता चलता है कि न केवल पर्यावरण बल्कि हर दृष्टि से आर्थिक और सामाजिक उत्थान में इसकी अहम् भूमिका सिद्ध होती है।

वृक्षारोपण से फायदे

लकड़ी की प्राप्ति : वृक्ष लगाने से जो फायदे हैं उनमें सर्वप्रथम अनेक प्रकार की उपयोगी, बहुमूल्य तथा ईंधन में प्रयुक्त होने वाली लकड़ी प्राप्त होती है। इसके तहत् जो वृक्ष लगाये जाते हैं उनसे इमारती लकड़ी प्राप्त होती है जिनका प्रयोग कृषि यंत्र, भवन निर्माण और फर्नीचर सहित अनेक क्षेत्रों में किया जाता है।

भारत में आज भी देहाती क्षेत्रों में अधिकांश निर्धन परिवारों में लोग भोजन पकाने के लिए लकड़ी का प्रयोग करते हैं। एक जानकारी के अनुसार देश में वर्ष भर में 11.10 करोड़ टन लकड़ी घरेलू ईंधन में और 2.20 करोड़ टन लकड़ी का उपयोग औद्योगिक ईंधन के रूप में किया जाता है। वस्तुओं की पैकिंग में भी लकड़ी का बड़े पैमाने पर उपयोग किया जाता है। आज फलों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के लिए पैकिंग करने में लकड़ी का प्रयोग होता है।

शुद्ध वायु, वर्षा और बाढ़ नियंत्रण : उद्योगों से भारी मात्रा में निकलने वला धुआं वायुमंडल में कार्बन डाइआक्साइड गैस एवं मीथेन गैस के घनत्व को बढ़ा देता है जिससे वायु प्रदूषित हो जाती है। मनुष्य के सांस लेने से ऑक्सीजन की मात्रा कम होती है और कार्बन डाइआक्साइड बढ़ती है। इसे शुद्ध करने का कार्य बड़े पैमाने पर वृक्ष लगाकर ही किया जा सकता है क्योंकि पेड़-पौधे कार्बन डाइआक्साइड लेते हैं और आक्सीजन छोड़ते हैं। दूसरी तरफ वृक्षों की बहुलता ही वायुमंडल के तापमान को कम करके वर्षा होने में सहायता करती है। बाढ़ पर नियंत्रण करने के लिए भी वृक्षों की बहुलता अत्यावश्यक है। बाढ़ के समय पेड़-पौधों के नीचे वाली जड़ और तना ही पानी के संपर्क में आता है। जड़ें वैज्ञानिक तौर पर पानी को अधिक मात्रा में अवशोषित तथा तना जल की गति को अवरोधित कर भूमि के कटाव को रोकने तथा बाढ़ नियंत्रण का कार्य करता है फलतः धन और जन की हानि कम होती है। मरुस्थलीय प्रदेशों में वातीयक्षरण रोकने के लिए कठोर पेड़-पौधे लगाये जाते हैं, जो वायु अवरोधक के रूप में मृदाक्षरण रोकने में सहायक होते हैं।

वनों से उद्योग आधारित कच्चे माल की प्राप्ति : विश्व के अनेक देशों की तरह भारत में भी अनेक ऐसे उद्योग चल रहे हैं जो पूर्णतः या अंशतः वनों पर या वृक्षों पर आधारित हैं। इनके लिए भी वृक्षारोपण की बहुत आवश्यकता है।

औषधि निर्माण उद्योग को विकसित करने में भी वृक्षारोपण अपनी अह्म भूमिका निभाता है। वनों एवं वृक्षों से प्राप्त जड़ी बूटियों से सुगंधित एवं औषध तेल बनाये जाते हैं। सर्पगंधा, ब्राह्मी आंवला, शंख पुष्पी आदि इनमें प्रमुख हैं। देश में पिम्परी, ऋषिकेश और अन्य स्थानों पर दवा कारखाने एवं अन्य औषधि निर्माण उद्योग इन्हीं पर आधारित हैं।

वनों में बरगद, बेर, सिरस, सीसु, क्रोटन, बबूल आदि के पेड़ों की नरम डालों को लैलीफर लक्का नामक लाख का कीड़ा चूसकर एक प्रकार का चिपचिपा पदार्थ निकालता है। इसे लाख के रूप में हम जानते हैं। यह उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा और बिहार के वनों में लाख उद्योग को विकसित करने में सहायक है। खैर वृक्ष की भीतरी कठोर लकड़ी से कत्था प्राप्त किया जाता है। इससे भी कत्था उद्योग का विकास किया जाता है। वृक्षों से विभिन्न प्राकर के रंग भी प्राप्त होते हैं। चमड़ा रंगने में भी कई वृक्षों की छाल एवं अन्य वृक्षों की छाल शामिल है। वनों में पाई जाने वाली नरम लकड़ियों के वृक्षों को कागज तथा लुग्दी उद्योग में प्रयोग में लाया जाता है। देश में आज कागज उद्योग को और विकसित करने

के लिए वृक्षों एवं घासों की बहुतायत मात्रा में आवश्यकता है।

दियासलाई उद्योग भी वृक्षों पर आधारित उद्योग है। सेमल, मुरकट, धूप, आम, सुंदरी, सलाई आदि वृक्षों की लकड़ी इस उद्योग में मुख्य रूप से प्रयोग में लाई जाती है। ये वृक्ष, बिहार, पश्चिमी बंगाल, मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्रों एवं जंगलों में बहुतायत से मिलते हैं। देश में आज इस उद्योग के तेजी से विकास के लिए इन वृक्षों के बड़े पैमाने पर लगाने की योजना बनाकर बेकारी की समस्या से संघर्ष किया जा सकता है। आज देश में बीड़ी उद्योग जितनी तेजी से बढ़ रहा है उसमें तेंदू वृक्ष की बेहद प्रभावी भूमिका है। इसके पत्तियों को तोड़कर ही तेंदू पत्ता से बीड़ी बनाने का उद्योग चल रहा है।

बाड़ लगाना एवं जंगली जानवरों की रक्षा : किसी भी देश की स्थायी सीमा पर बाड़ लगाने का कार्य सरकार झाड़ीदार कांटेदार एवं घने पेड़-पौधों को लगाकर करती है। इससे जहां एक तरफ सुरक्षा में सहायता मिलती है वहीं दूसरी तरफ इससे जंगली जानवरों का प्रवेश बंद हो जाता है। अब तो सरकार जंगली जानवरों की लुप्त होती जा रही प्रजातियों को जीवंत बनाने के लिए भी वृक्षारोपण एवं जंगल लगाने को प्राथमिकता देने लगी है। अभी देश में कुल 363 वन्य जीवन अभयारण्य है। इनमें से सर्वाधिक 94 अभयारण्य केंद्र शासित प्रदेश अंडमान और निकोबार द्वीप-समूह में जंगलों के रूप में फैले हैं। घने जंगलों एवं जंगली जानवरों की मांद को लांघकर सीमा पर अवैध तरीके से प्रवेश को रोकने में भी सहायता मिल सकती है। वैसे भी अब जीवनयापन हेतु मानव एवं वृक्ष दोनों को मिलाकर संघर्ष करने का समय आ रहा है।

वृक्षों से कलात्मक वस्तुओं का निर्माण : वृक्षारोपण करके कलात्मक वस्तुओं के निर्माण की दिशा को भी नया रूप दिया जा सकता है। पेड़-पौधों द्वारा काष्ठीय लकड़ी व पुष्पों से भिन्न-भिन्न तौर-तरीके के गुलदस्ते, फूलदान, डिब्बियों आदि का निर्माण कर बेरोजगार लोगों को रोजगार एवं कला निपुण कारीगर बनाया जा सकता है। अनेक ऐसे कुटीर एवं मनोहारी उद्योग बिहार और मध्य प्रदेश सहित अन्य राज्यों में वनों एवं वृक्षों पर आधारित चल रहे हैं जिससे लोगों का जीवनयापन हो रहा है। ताड़ के पेड़ से पंखा उद्योग, खजूर के पेड़ से चटाई उद्योग आदि ऐसे उद्योग हैं जो कला के साथ-साथ अपनी रोजी-रोटी की समस्या का समाधान करते हैं। आज जंगल आधारित उद्योग भी बहुत फल-फूल रहे हैं। वृक्षारोपण द्वारा सुंदरतम एवं मन को बरबस आकर्षित कर लेने वाले दृश्य उपस्थित करके मानव में सौन्दर्य भावना जगाकर एवं उन्हें प्रकृति प्रेमी बनाकर भी वृक्षारोपण से फायदे अर्जित किए जा सकते हैं। इसके अलावा शाकाहारी एवं मांसाहारी जीव वनों में रहकर ही अपना जीवन चलाते हैं। इन पशुओं के क्रीड़ास्थल पक्षी अभयारण्य तथा राष्ट्रीय उद्यान देश की अर्थव्यवस्था को ऊंचा उठाने में बहुत महत्वपूर्ण हैं जो कि मूलतः वृक्षों एवं वनों द्वारा ही संभव है।

इस प्रकार जाहिर है कि वृक्ष हमारे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की मुख्य धरोहर हैं। भारत में वनों का क्षेत्रफल लगभग आठ लाख हेक्टेयर है जो कि आज की आवश्यकता के लिहाज से बहुत कम है। यही वजह है कि आज वृक्षारोपण पर बहुत अधिक जोर दिया जा रहा है। आज प्रत्येक भारतवासी को प्रतिवर्ष कम के कम एक वृक्ष अवश्य लगाने की जरूरत है। इसके अलावा पहले से लगे वृक्षों की देखभाल तथा उन्हें सुरक्षित रखना हमारा कर्त्तव्य होना चाहिए। एक वृक्ष काटना यानि एक जिंदगी की मौत होना मानना चाहिए। इसे राष्ट्रीय सम्पत्ति मानकर इसकी हर हालत में रक्षा जरूरी है। हमें वृक्षों का सदुपयोग करना चाहिए दुरूपयोग नहीं।

ग्राम - मालिन,
पत्रा. - बड़ादिग्घी,
जिला - साहिबगंज,
816101, बिहार

मार्च 1994

प्रतियोगिता सम्राट

प्रतियोगिता जगत का संपूर्ण मासिक

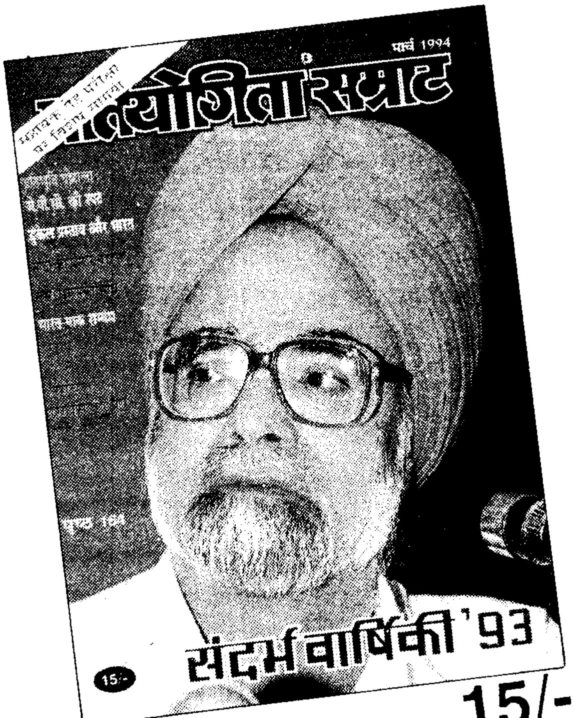

15/-

पृष्ठ 164

सिविल सर्विसेज (प्रा.) परीक्षा विशेषांक

सभी प्रतियोगी परीक्षाओं में निश्चित सफलता के लिए

शुल्क :
प्रति अंक 15/-;
वार्षिक 150/-
अपना वार्षिक शुल्क/ आर्डर
निम्न पते पर भेजें :

विशेष अध्ययन सामग्री

संदर्भ वार्षिकी '93

कौन, क्या, कहां (भारत एवं विश्व) , घटनाक्रम 1993 (राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय) , सम-सामयिक सामान्य ज्ञान वार्षिकी , विधि वार्षिकी, अर्थ वार्षिकी, अंतर्राष्ट्रीय वार्षिकी, राष्ट्रीय वार्षिकी, भारत और पड़ोसी मुल्क, भारत-पाकिस्तान सम्बंधों के दायरे, महत्वपूर्ण तथ्य/ दिवस, तथ्य वार्षिकी, खेल वार्षिकी, विज्ञान वार्षिकी

संदर्भ/ आलेख :

* 'बोस - आइंस्टाइन सांख्यिकी के जनक प्रो. सत्येन बोस * 'मैं वक्त के हूं सामने : गिरिजा कुमार माथुर * 'नाटो' : बदलता परिदृश्य * डुंकेल प्रस्ताव और भारत * प्रक्षेपास्त्र लक्ष्य परिवर्तन : रूस-अमेरिका का प्रथम यथार्थवादी समझौता * प्रतिभूति घोटाला : संयुक्त संसदीय समिति की रपट * भारत में फिल्में और फिल्म समारोह

परीक्षा परिशिष्ट :

सहायक ग्रेड परीक्षा (कर्मचारी चयन आयोग) 1992 का हल प्रश्न-पत्र : अंकगणित , तर्क शक्ति परीक्षण , सहायक ग्रेड (इंटिलेजेंस ब्यूरो) परीक्षा 94 का हल प्रश्न-पत्र, लिपिक (रूटीन ग्रेड) परीक्षा, इलाहाबाद हाई कोर्ट '94 का हल प्रश्न-पत्र

दीवान पब्लिकेशंज़ प्रा. लि.
L-I, कंचन हाउस,
नजफगढ़ रोड कमर्शियल कॉम्प्लैक्स ,
नई दिल्ली-110015

सहयोगी प्रकाशन

क्रिकेट सम्राट नन्हें सम्राट

कैलेंडर की यात्रा – कथा

✍ योगेश चन्द्र शर्मा

कालचक्र को सात-सात दिनों के खंडों में बांटने की परंपरा विश्व के अधिकांश स्थानों पर प्रारम्भ से ही रही है। इसके पीछे संभवतः मुख्य कारण उन दिनों की यह मान्यता रही कि ब्रह्मांड में स्थिर तारों के अतिरिक्त सात सचल ग्रह भी हैं। ईसाई धर्म ने सात दिनों के इस सप्ताह को एक धार्मिक आधार भी दिया। ईसाई धर्म के पुराने टैस्टामैंट के अनुसार ईश्वर ने छः दिन तक इस विश्व का निर्माण किया तथा सातवें दिन विश्राम किया। इस प्रकार सप्ताह में एक दिन के अवकाश की भी परंपरा चल निकली। इन सात दिनों के नाम भी अलग-अलग देशों में अपने-अपने देवताओं या ग्रहों के नाम पर रखे गए। यूरोप में सात दिनों के सप्ताह की परंपरा मूलतः पश्चिमी एशिया से ग्रहण की गई, किन्तु नामकरण में कुछ भिन्नता आई। "सण्डे" (रविवार), "मण्डे" (सोमवार) तथा "सैटरडे" (शनिवार) के नाम अंग्रेजी भाषा से प्रभावित हुए तथा शेष नामों पर प्राचीन भाषा रोमांच का प्रभाव रहा।

कालचक्र को सप्ताहों में बाँटने की इस सामान्य परम्परा के बावजूद माह और वर्ष में इस प्रकार की कोई समानता प्राचीन युग में नहीं थी। माह और वर्ष का आधार कहीं मौसम होता था, कहीं कोई अन्य प्राकृतिक घटना। विशेष प्रकार की फसल या विशेष प्रकार के पक्षियों के आगमन को भी कहीं-कहीं समय विभाजन का आधार बनाया जाता और तदनुसार वार्षिक कैलेंडर बनते। इसके उपरान्त चन्द्रमा के आकार तथा गति के आधार पर कैलेंडर बनने लगे, मगर उससे भी निश्चितता नहीं आ सकी। कभी महीना तीस दिन का होता और कभी 29 दिन का। वर्ष भर के दिन भी निश्चित नहीं रह पाते। ज्यों-ज्यों ब्रह्मांड के बारे में हमारा ज्ञान बढ़ता चला गया, त्यों-त्यों ही कैलेंडर में भी सुधार होता चला गया। अब कैलेंडर का आधार चन्द्रमा के स्थान पर सूर्य को बनाया गया। किन्तु उसमें बहुत लम्बा समय लगा तथा कैलेंडर की कहानी में अनेक मनोरंजक मोड़ आए। सूर्य को आधार बनाने के बाद भी कैलेंडर को अपना वर्तमान स्वरूप प्राप्त करने में अनेक बाधाओं तथा अनिश्चितताओं का सामना करना पड़ा।

रोमन सम्राट रोम्यूलस ने अपने राज्य में जो कैलेंडर बनाया था, उसमें सिर्फ दस महीने होते थे। जनवरी और फरवरी के महीने उसमें थे ही नहीं। वर्ष का आरम्भ मार्च से होता था। इसके बाद सम्राट पोम्पीलस ने इसमें सुधार करके जनवरी तथा फरवरी को जोड़ा मगर इनका क्रम रहा वर्ष के अन्त में। वर्ष का आरम्भ अब भी मार्च से ही होता मगर समाप्ति फरवरी में होने लगी। जनवरी माह का नमा रोमन देवी "जेनस" के नाम पर रखा गया। चूंकि इस कैलेंडर का अधार चन्द्रमा की गति था इसलिए इस कैलेंडर में कुल 355 दिन ही होते थे। इसका मौसम से भी कोई सम्बन्ध नहीं था। फलस्वरूप किस वर्ष किस माह में कौन सा मौसम आएगा, इस सम्बन्ध में अनिश्चितता बनी रही। यह स्थिति शताब्दियों तक चलती रही।

मिस्र में ईसा से 2773 वर्ष पूर्व ही सूर्य के आधार पर कैलेंडर बन गया। उस कैलेंडर में चार-चार माह के तीन मौसम तथा प्रत्येक माह में तीस दिन रखे गए। इस प्रकार कुल 360 दिन हुए। इसके बाद पांच दिन का अन्तराल रखा जाता है और तब नया वर्ष शुरू होता। इस प्रकार वर्ष में 365 दिन पूरे कर दिए गए। मगर सूर्य जिस अवधि में पृथ्वी की परिक्रमा पूरी करता है, वह वास्तव में 365 दिन से भी कुछ अधिक है। इस प्रकार यह कैलेंडर भी व्यवहार में सूर्य की गति से निरंतर पिछड़ता रहा। फिर भी यत्किंचित परिवर्तनों के साथ यह कैलेंडर मिस्र में 3000 वर्षों तक प्रचलन में रहा।

कैलेंडर के निर्माण में रोमन सम्राट जूलियस सीजर का विशेष योगदान रहा। उसने मिस्र के समान रोम में भी कैलेंडर को चन्द्रमा के स्थान पर सूर्य के साथ जोड़ दिया। ईसा से 45 वर्ष बाद उसने जो व्यवस्था की, उसके अनुसार जनवरी, मार्च, मई, जुलाई, सितंबर और नवंबर में 31 दिन तथा फरवरी के अतिरिक्त शेष दिनों में 30 दिन रहे। फरवरी के लिए यह व्यवस्था की गई कि फरवरी में केवल 29 दिन रहें तथा हर चौथे वर्ष उसमें 30 दिन हों। इस प्रकार औसतन प्रतिवर्ष 365 दिन की अवधि रही और चार वर्ष में इसमें एक दिन बढ़ जाता। फिर भी यह अवधि सूर्य की परिक्रमा अवधि के अनुकूल न रही। इसलिए इसमें संशोधन की आवश्यकता महसूस की जाती रही।

नये कैलेंडर के साथ अपने नाम को स्थायित्व प्रदान करने की दृष्टि से भी जूलियस सीजर ने कुछ कार्य किये। उसने सर्व प्रथम तो इस कैलेंडर का नाम ही जूलियस कैलेंडर रखा। दूसरे उसने वर्ष का प्रारम्भ मार्च के स्थान पर जनवरी से किया, जो कि उसके सिंहासनारोहण का माह था। तीसरे अपने जन्म के सातवें महीने को अमर बनाने के लिए उसका नाम ही बदलकर जुलाई कर दिया, जिसे पहले "क्विटिलिस" कहते थे। जिस वर्ष फरवरी में एक दिन अधिक होता, उसे 'लीप वर्ष' कहा जाने लगा। इस प्रकार उसे रोम के प्रसिद्ध त्यौहार 'लीप' से जोड़ दिया गया, जो फरवरी में ही मनाया जाता था। यह जूलियस कैलेंडर लगभग डेढ़ हजार वर्षों तक रोमन साम्राज्य तथा यूरोप के अन्य अनेक देशों में प्रचलित रहा। इस बीच इसमें एक ही उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ। वह यह था कि जूलियस सीजर के उत्तराधिकारी रोमन सम्राट अगस्टस ने अपने नाम को अमर बनाने की दृष्टि से वर्ष के आठवें महीने "सेक्सिटलिस" का नाम बदलकर अगस्त कर दिया।

16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पोप ग्रेगरी ने गणना करके यह निष्कर्ष निकाला कि पृथ्वी का सूर्य के चारों ओर परिक्रमाकाल 365 दिन और 6 घण्टे न होकर, 365 दिन, 6 घण्टे, 9 मिनिट तथा 9.5 सैकेंड है। इस प्रकार कैलेंडर की प्रचलित व्यवस्था प्रति वर्ष 9 मिनिट तथा 9.5 सैकेंड पीछे रह जाती है। एक वर्ष में तो इससे विशेष अन्तर नहीं आता किन्तु 100 वर्षों में यह अन्तर बढ़कर 15 घंटे और 6 मिनिट हो जाता है। इससे पोप ग्रेगरी ने गणना करके यह आश्चर्यजनक रहस्य उद्‌घाटित किया कि 16वीं शताब्दी तक कैलेंडर की दुनिया वस्तुस्थिति से 11 दिन पीछे रह गई है। इसलिए उन्होंने सुझाव दिया कि वर्तमान में इस अन्तर को समाप्त करने के लिए कैलेंडर में 11 दिन छोड़कर आगे छलांग लगा ली जाए। उक्त सुझाव तत्काल मान लिया गया और तदनुसार 1582 ईस्वी के सितम्बर माह में दो तारीख के बाद सीधे 14 तारीख कर दी गई। उस समय के अन्धविश्वासी जन साधारण स्थिति को नहीं समझ पाए। इसलिए इस व्यवस्था का प्रबल विरोध हुआ। गायब किए ग्यारह दिन वापिस लौटाने के लिए सम्पूर्ण इंग्लैंड में आवाज उठाई गई। आन्दोलन ने कहीं कहीं हिंसक स्वरूप भी धारण किया। बड़ी कठिनाई से ही स्थिति पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सका।

व्यवस्था में स्थायी सुधार लाने की दृष्टि से पोप ग्रेगरी ने यह सुझाव दिया कि फरवरी माह में एक दिन अधिक करने के लिए सम्बन्धित वर्ष चार की संख्या से तो विभाजित हो ही, साथ ही जिस संख्या में 100 का पूरा भाग जाता हो, वह संख्या 400 से भी विभाजित होनी चाहिए। इस व्यवस्था को भी तत्काल स्वीकार कर लिया गया। इस व्यवस्था के अंतर्गत ही सन् 1900 को चार से विभाजित होने के बावजूद लीप वर्ष नहीं माना गया। मगर सन् 2000 का वर्ष लीप वर्ष अवश्य होगा।

कैलेंडर में कुछ और भी परिवर्तन किए गए। अब लीप वर्ष वाली फरवरी में 29 दिन होते हैं तथा शेष 28। इसकी क्षतिपूर्ति के लिए 31 दिन वाले महीने छः के स्थान पर सात कर दिए गए। वे हैं जनवरी, मार्च, मई, जुलाई, अगस्त, अक्टूबर तथा दिसम्बर। इस प्रकार सामान्य वर्षों में 365 तथा लीप वर्ष में 366 दिन रहे। इन परिवर्तनों के बावजूद वर्तमान कैलेंडर को भी पूर्णतः सही कहना गलत होगा। यह कैलेंडर प्रतिवर्ष वस्तुस्थिति से थोड़ा आगे हो जाता है तथा दस हजार वर्षों में यह अन्तर 2 दिन 14 घण्टे और 24 मिनिट हो जाता है। सामान्य जन जीवन में इस अन्तर का कोई विशेष महत्व नहीं है किन्तु वैज्ञानिक और तकनीकी दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसीलिए सन् 1979 में 31 दिसम्बर के आखिरी मिनिट में 60 के स्थान पर 61 सैकेंड कर दिए गए थे। आगे भी इस प्रकार की छोटी छलांग आवश्यक होगी।यह भी संभव है कि आगे चलकर शायद कैलेंडर में अन्य कोई संशोधन हो। तब संभवतः इस प्रकार की छोटी या बड़ी छलांग की कोई आवश्यकता न रहे।

पोप ग्रेगरी द्वारा संशोधित होने के कारण वर्तमान कैलेंडर को ग्रेगोरियन कैलेंडर कहते हैं। इसे प्रारम्भ में कैथोलिक प्रधान देशों ने ही अपनाया किन्तु बाद में धीरे-धीरे अन्य देशों ने भी उपयोगिता के आधार पर इसे स्वीकार कर लिया। 1917 में सोवियत संघ की भी स्वीकृति इसे मिल गई। इसके बाद तो इसे अन्तर्राष्ट्रीय कैलेंडर के रूप में स्वीकार किया जाने लगा।

10/611, मान सरोवर,
जयपुर–302020 (राज.)

पर्यावरण प्रदूषण : दो चित्र

✍ राजेश हजेला

(1)
अब नहीं दिखाई देतीं
गगन-शिखर से
धीमे-धीमे उतरतीं
किन्नरियों-सी सूरज की बेटियां
अब नहीं दिखाई देतीं
नीले स्वच्छ आकाश के
धवल चन्द्रमा की गोद से उतरती
चांदनी की दूधिया धार
अब नहीं दिखाई देतीं
नरम-नरम तट तोड़ती
नौनी भुजाओं वाली सरिताएं
और
उनके तरल जल में
ओंकार ध्वनि करतीं
बिजलियों-सी चंचल मछलियां
दूर...... कोसों दूर तक
जिधर देखो उधर
मीलों तक विस्तारित रेगिस्तान
कानों को चीरती अप्रिय ध्वनियां
नासिका-रन्ध्रों का संस्पर्श करती दुर्गन्ध
जहर घुली जल-धार
संकट है
सचमुच बड़ा संकट है
पर मात्र
चांदनी-सूरज
सरिता या मछलियों पर
नहीं
यह संकट है
मानवता के अस्तित्व पर
आओ हम इस संकट से
लड़ें
पर्यावरण की
सुरक्षा में जुड़ें।

(2)
प्रदूषण.............?
विकास के
गर्भ से उत्पन्न
एक ज्वलंत प्रश्न
जिसने
धारण कर लिया है
एक अवश्यंभावी
संकट का मुखौटा
हमारे ही
समीप से निकलते हैं
त्रासदी के
अनगिनत बिम्ब
अवश्य होनी चाहिए
मनुष्य और पर्यावरण के
संबंधों की पड़ताल
रेखांकित करना होगा
विज्ञान का
तथावांछित विकास
और
अंतरंग बनाने होंगे
मानव और प्रकृति के
पुरातात्विक-संबंध।

4/10, तकिया नशरत शाह,
फर्रुखाबाद (उ. प्र.) 209625

प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण

✍ अरुण कुमार पाठक

मनुष्य अपने जीविकोपार्जन के लिए प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करता है। आदिम मानव अपने पर्यावरण से प्राप्त वनस्पतियों एवं पशुओं पर निर्भर था। उस समय जनसंख्या का घनत्व कम था, मनुष्य की आवश्यकताएं सीमित थीं तथा प्रौद्योगिकी का स्तर नीचा था। अतः उस समय संरक्षण की समस्या नहीं थी। कालान्तर में मनुष्य ने संसाधनों के दोहन की प्रौद्योगिकी का विकास किया। वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास द्वारा मनुष्य जीविकोपार्जी संसाधनों के अतिरिक्त उत्पादन के संसाधनों का भी दोहन करने लगा। अब आधुनिक तकनीकों की सहायता से संसाधनों का दोहन बड़े पैमाने पर होने लगा है। जनसंख्या की निरंतर वृद्धि के कारण संसाधनों की मांग बढ़ रही है। प्रौद्योगिकी के विकास द्वारा इन्हें उपभोग करने की मनुष्य की क्षमता भी बढ़ी है। इस होड़ ने यह आशंका उत्पन्न कर दी है कि कहीं ये संसाधन शीघ्र समाप्त न हो जाएं और पूरी मानवता के जीवन पर ही प्रश्न चिह्न न लग जाये।

ऐसा आभास होता है कि अत्यधिक उपभोगवाद के कारण मनुष्य अपनी चादर के बाहर पैर फैलाने का प्रयत्न कर रहा है। उत्पादन को चरम सीमा तक पहुंचाने की लालसा में मनुष्य संसाधनों की भावी निधि से भी स्थायी उधार लेता जा रहा है। फलस्वरूप वे संसाधन जो आने वाली पीढ़ियों की धरोहर हैं, हम उसका उपयोग भी करते जा रहे हैं। यह किसी देश या जाति विशेष के लिए नहीं समस्त मानव जाति के लिए चिंता का विषय है।

संरक्षण से तात्पर्य

प्राकृतिक संपदाओं का योजनाबद्ध और विवेकपूर्ण उपयोग किया जाए तो उनसे अधिक दिनों तक लाभ उठाया जा सकता है, वे भविष्य के लिए संरक्षित रह सकती हैं। संपदाओं या संसाधनों का योजनाबद्ध, समुचित और विवेकपूर्ण उपयोग ही उनका संरक्षण है। संरक्षण का यह अर्थ कदापि नहीं कि (1) प्राकृतिक साधनों का उपभोग न कर उनकी रक्षा की जाये या (2) उनके उपयोग में कंजूसी की जाये या (3) उनकी आवश्यकता के बावजूद उन्हें भविष्य के लिए रखा जाये। अतः संरक्षण से हमारा तात्पर्य है कि संसाधनों या संपदाओं का अधिकाधिक समय तक अधिकाधिक मनुष्यों की आवश्यकता की पूर्ति हेतु उपयोग।

संरक्षण की आवश्यकता

मानव विभिन्न प्राकृतिक साधनों का उपयोग अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए करता रहा है।खाद्यान्नों और अन्य कच्चे पदार्थों की पूर्ति के लिए उसने भूमि को जोता है, सिंचाई और शक्ति के विकास के लिए उसने नदियों का उपयोग किया है, औद्योगिक विकास के लिए उसने वन्य पदार्थों एवं खनिजों का शोषण और उपयोग किया है। पिछली दो शताब्दियों में जनसंख्या तथा औद्योगिक उत्पादनों की वृद्धि तीव्र गति से हुई है। विश्व की जनसंख्या आज से दो सौ वर्ष पूर्व जहां पौने दो अरब थी वहां अब सवा पांच अरब पहुंच चुकी है। हमारी भोजन, वस्त्र, आवास, परिवहन के साधन, विभिन्न प्रकार के यंत्र, औद्योगिक कच्चे माल आदि की आवश्यकताएं कई गुणा बढ़ गयी हैं। इस कारण हम प्राकृतिक संसाधनों का तेजी से शोषण करते जा रहे हैं। उदाहरणार्थ, पिछली दो शताब्दियों में करोड़ों हेक्टेयर भूमि से प्राकृतिक वनस्पतियों को साफ कर दिया गया है जिससे मिट्टी का कटाव बहुत बढ़ गया है। भूमि के गलत उपयोग से उसकी उत्पादन क्षमता घट गयी है। विभिन्न खनिज पदार्थों की संचित राशि समाप्त प्रायः हो गयी है। हम हवा और पानी को प्रकृति की मुफ्त देन समझकर प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से दूषित करने में लगे हैं। अनेक जीव जंतुओं का भी हमने सफाया कर दिया। तात्पर्य यह है कि प्राकृतिक संतुलन बिगड़ने लगा है। यदि यह संतुलन नष्ट हुआ तो मानव का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायेगा। अतः मानव के अस्तित्व एवं प्रगति के लिए प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण अत्यावश्यक हो चला है।

संसाधनों के संरक्षण के उपाय

संसाधन मनुष्य के उपभोग के लिए हैं, यह धारणा सही है परन्तु इनका उपभोग इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे असंतुलन की स्थिति उत्पन्न न होने पाये। प्राचीनकाल में 'त्याग

के साथ भोग की अवधारणा' इसी असंतुलन की स्थिति को न उत्पन्न होने देने के उपाय की ओर इंगित करती है।

प्राकृतिक संपदा हमारी पूंजी है जिसका लाभकारी कार्यों में सुनियोजित ढंग से उपयोग होना चाहिए। इसके लिए पहले हमें किसी देश या प्रदेश के संसाधनों की जानकारी होनी चाहिए। फिर हमें ध्यान रखना चाहिए कि विभिन्न संसाधन परावलम्बी तथा परस्पर प्रभावोत्पादक होते हैं। अतः एक का ह्रास हो या नाश हो तो उसका कुप्रभाव पूरे आर्थिक चक्र पर पड़ता है। हमें इनका उपयोग प्राथमिकता के आधार पर करना चाहिए। जो संसाधन या प्राकृतिक संपदा सीमित है, उन्हें अंधाधुंध समाप्त करना अदूरदर्शिता है। सीमित परिमाणवाली संपदा (यथा कोयला, पैट्रोलियम) के विकल्प की खोज करते रहना श्रेयस्कर है। संसाधनों के संरक्षण के लिए सरकारी तथा गैर सरकारी स्तर पर पूर्ण सहयोग मिलना आवश्यक है। यहां विभिन्न प्राकृतिक संपदाओं के संरक्षण का संक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

मृदा संरक्षणः मृदा वनस्पतियों के उगने का माध्यम है जो विभिन्न प्रकार के प्राणियों का जीवन आधार है। फसलें, घास, फल, फूल, सब्जियां, वृक्ष आदि सभी मृदा में उगते हैं। मृदा एक नवीकरण योग्य संसाधन है परन्तु अपरदन आदि से कुछ ऐसी समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं जिससे मृदा संरक्षण आवश्यक हो जाता है।

मृदा को बहुत बड़ी हानि अपरदन से होती है। मृदा अपरदन प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक कारणों से होता है। इसके प्राकृतिक कारक भूमि की ढाल, वर्षा की तीव्रता, वायु वेग, हिमानी प्रवाह आदि हैं। सांस्कृतिक कारकों में वनों का अत्यधिक दोहन, धरातल पर वनस्पतियों का विनाश, अति पशु चारण एवं अवैज्ञानिक कृषि पद्धति आदि मुख्य हैं। मृदा संरक्षण के उपाय स्थानीय कारकों के आधार पर किये जाते हैं।

पर्वतीय ढालों पर सीढ़ीनुमा खेत बनाकर कृषि करना, समोच्च रेखाओं के साथ जुताई करना, स्थानान्तरी कृषि क्षेत्रों में इस पर रोक लगाना, वनारोपण, अवनालिकाओं को पत्थरों से बन्द करना तथा अवनालिकाओं को शीर्ष की ओर बढ़ने से रोकना मृदा संरक्षण के प्रमुख उपाय के रूप में अपनाए जाते हैं।

शुष्क एवं मरुस्थलीय क्षेत्रों में मृदा अपरदन वायु द्वारा होता है। वृक्षों तथा वनस्पतियों के विनाश से वायु वेग की तीव्रता में अवरोध नहीं होता। अतः अपरदन को रोकने के लिए वृक्षों का लगाना एक प्रभावशाली उपाय है। थोड़ी-थोड़ी दूर पर वृक्षों की कतारें लगाकर शैल्टरबेल्ट बनाई जा सकती है। फसल कटने के बाद खेत खाली हो जाते हैं, उन पर भी वायु वेग से मृदा अपरदन होता है। अतः इससे बचने के लिए फसल का 30-35 से. मी. तक डंठल छोड़कर काटना चाहिए जिससे धरातल पर वायु वेग का प्रभाव न पड़े। मरुस्थलीय क्षेत्रों में अति पशुचारण पर प्रतिबंध लगाकर भी मृदा अपरदन को रोका जा सकता है। इसरायल में पेट्रोलियम जैली का उपयोग भी किया गया है।

मृदा का सबसे महत्वपूर्ण गुण इसकी उर्वरता है। इसका संरक्षण आवश्यक है। उर्वरता में ह्रास से उत्पादकता कम हो जाती है। हरी तथा गोबर की खाद मिलाकर, रासायनिक उर्वरकों तथा जिप्सम के प्रयोग, फसल चक्र अपनाकर तथा परती छोड़कर मृदा की उर्वरता को बढ़ाया जाता है। इससे मृदा का नवीकरण भी होता रहता है।

संसार के विकासशील देशों में मृदा अपरदन की समस्या बनी हुई है। मृदा अपरदन को रोकने के उपाय स्थानीय दशाओं के आधार पर चुने जा सकते हैं। इस कार्य के लिए पर्याप्त पूंजी और योजनाबद्ध कार्यक्रम की आवश्यकता है।

वनस्पति का संरक्षणः वनस्पति का उपयोग दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। औद्योगिक क्रांति के बाद वनों का बड़े पैमाने पर ह्रास हुआ है। भारत के कई भागों में ईंधन और कच्चे कोयले के लिए लकड़ी की अंधाधुंध कटाई हुई। प्राचीन तृणभूमियां आज कृषि क्षेत्र में बदल गयी हैं। इसका परिणाम हैं मिट्टी का कटाव। कहीं कहीं दावाग्नि, कीड़े दीमक आदि से भी वनों को क्षति पहुंचती है। इन क्षतियों से बचने के लिए वन संरक्षण अनिवार्य है।

वन संरक्षण के लिए इन बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है

1. जिन क्षेत्रों से निकट अतीत में वृक्ष काट डाले गये हैं वहां वृक्षारोपण किया जाये। वृक्षारोपण से न केवल वन संपदा की वृद्धि होगी बल्कि मिट्टी का कटाव कम होगा, अपवाह घटेगा और भूमिगत जल की आपूर्ति में वृद्धि होगी।

2. वनों से केवल परिपक्व वृक्ष ही काटें जायें। इससे छोटे-छोटे वृक्षों को बढ़ने का अवसर मिलेगा।

3. वन प्रदेश में कटाई के लिए फसल चक्र पद्धति अपनायी जाये तो क्रम से वन विकसित होगा और नियमित लाभ होता रहेगा।

4. वन क्षेत्र का विस्तार किया जाये अर्थात नए वन लगाए जायें।

5. वनों की देखभाल ठीक से की जाये। उन पर दीमक तथा अन्य कीटाणुओं और बीमारियों से बचाव के लिए हेलिकाप्टर द्वारा दवा का छिड़काव कराया जाये।

6. वन संरक्षण के लिए सरकार एक कठोर नियंत्रण नीति लागू करे।

जीव जंतुओं का संरक्षणः जीवन की विविधता बनाए रखने में वन्य प्राणियों का बहुत योगदान है। रंग बिरंगी चिड़ियां, जानवर एवं अन्य जीव जंतु वनों में पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं। वनों में भोजन श्रृंखला को बनाए रखने में प्रत्येक प्राणी का बहुत योगदान है। वनों के ह्रास के साथ-साथ वन्य प्राणियों की संख्या में भी कमी आयी है। इनकी जातियां समाप्त न हो जाये इसलिए इनका संरक्षण आवश्यक है। भविष्य के लिए जीव जंतुओं को सुरक्षित रखने में ये उपाय कारगर सिद्ध हुए हैं:

1. विश्व के विभिन्न भागों में जीवों को शरण देने के लिए स्थान स्थापित करना। हमारे देश में राष्ट्रीय उद्यानों और अभयारण्यों की स्थापना इसी उद्देश्य से की गयी है। इन उद्यानों और अभयारण्यों में वन्य जीव जंतुओं को प्राकृतिक वातावरण उपलब्ध कराया गया है तथा इनके शिकार पर प्रतिबंध है।

2. पालतू पशुओं की उचित देखभाल ताकि उनकी नस्ल न बिगड़े तथा उनसे अधिक मात्रा में उत्पादन मिल सके।

3. चारे की फसलें उगाना, चरागाहों में उर्वरक का प्रयोग करना, पशुओं का चयन और नस्ल सुधार करना ताकि पशुओं के संरक्षण के साथ अधिक उत्पादन मिल सके।

खनिज संपदा का संरक्षणः खनिजों का निरंतर खनन करते रहने पर कुछ वर्षों बाद उनकी समाप्ति हो जाती है। अतः खनिजों का संरक्षण अति आवश्यक है। विश्व में खनिजों का असमान वितरण मिलता है और उसकी मात्रा सीमित है। अतः उनके संचित भण्डार के सरंक्षण की और भी अधिक आवश्यकता है।

जल संरक्षणः जल जीवन है। पृथ्वी के धरातल पर दो तिहाई जल है। समस्त वनस्पतियों, पशुओं तथा मानव जीवन का आधार है। जल का उपयोग कृषि, उद्योगों, यातायात, ऊर्जा तथा घरेलू उपयोग के संसाधन के रूप में किया जाता है। जल का संरक्षण जीवन का संरक्षण है।

जल एक चक्रीय संसाधन है जिसको वैज्ञानिक ढंग से साफ कर पुनः प्रयोग में लाया जा सकता है। पृथ्वी पर जल वर्षा और बर्फ से उपलब्ध होता है। यदि जल का युक्तिसंगत उपयोग किया जाये तो वह हमारे लिए कभी कम नहीं पड़ेगा। परन्तु संसार के कुछ भागों में जल की बहुत कमी है। वर्षा का जल प्रवाहित होकर नदियों एवं नालों में पहुंचता है। इसके उपयोग के लिए जल को बांध बनाकर रोका जा सकता है।

जल का अधिकतम उपयोग कृषि में सिंचाई के लिए किया जाता है। यदि सिंचाई में प्रयोग होने वाले जल की बचत संभव हो सके तो यह बड़ी मात्रा में अन्य कार्यों के लिए भी उपलब्ध हो सकता है। नहरों को पक्का करके जल को पृथ्वी के अन्दर जाने से रोका जा सकता है। स्प्रिंकलर प्रभावी सिंचाई का माध्यम है।इससे पानी की बचत होती है तथा ऊंची नीची भूमि पर भी सिंचाई की जा सकती है। यद्यपि इसमें पूंजी अधिक लगती है परन्तु वाष्पीकरण, द्वारा होने वाली पानी की हानि को रोका जा सकता है।

उद्योगों में पानी की भारी मांग होती है। इसे कम करने से दो लाभ होंगे। प्रथम इससे उद्योग के अन्य खण्डों की पानी की मांग को पूरा किया जा सकता है। द्वितीय इन उद्योगों द्वारा नदियों एवं नालों में छोड़े गये दूषित जल की मात्रा कम हो जायेगी। अधिकांश उद्योगों में जल का उपयोग शीतलन के लिए होता है। इस कार्य के लिए यह आवश्यक नहीं कि स्वच्छ और शुद्ध जल का प्रयोग किया जाये। इस कार्य के लिए पुनःशोधित जल का उपयोग किया जा सकता है। इसी पानी को बार-बार प्रयोग करके स्वच्छ जल की मात्रा को संरक्षित किया जा सकता है।

वायु संरक्षणः वायु प्राण का आधार है। अतः वायु की शुद्धता पर हमारा स्वास्थ्य निर्भर करता है। वायु में कुछ तो नैसर्गिक अशुद्धताएं होती हैं। परन्तु अधिकांश अशुद्धताएं मनुष्य द्वारा उत्पन्न की गयी हैं। मनुष्य द्वारा प्रदूषण बड़े पैमाने पर हो रहा है। खनिज तेल, मशीनों और मोटरगाड़ियों में जलकर सल्फर तथा नाईट्रोजन आक्साइड उत्पन्न करता है। धात्विक अयस्क गलाने के लिए कोयला जलाया जाता है। जिसका धुआं आकाश पर छाया रहता है। फैक्टरियों की चिमनियों से निकलने वाला धुआं रेडियोधर्मी पदार्थों से निकलने वाला विकिरण आदि सभी वायु को प्रदूषित कर रहे हैं। अतः वायु का संरक्षण आवश्यक है।

वायु की शुद्धता को दो प्रकार से बनाए रखा जा सकता है। प्रथम तकनीकी नियंत्रण द्वारा तथा द्वितीय भारी कर लगाकर। इसके लिए मोटर गाड़ियों, चिमनियों में ऐसी जाली लगाना आवश्यक है ताकि वायु में हानिकारक तत्व न पहुंचे। चिमनियों की ऊंचाई अधिक रखी जाये। अधिक वृक्षारोपण तथा मानव अधिवासों के पास हरित क्षेत्र बनाकर वायु के प्रदूषण को कम किया जा सकता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मिट्टी और वनों के ह्रास, जीव जंतुओं के संहार, खनिजों के अत्यधिक खनन, धुआं और जहरीले औद्योगिक प्रदूषणों से भरे महानगरीय वातावरण तथा जल एवं वायु के प्रदूषण से मानव जाति की नौका डगमगा रही है, उसकी शांति और समृद्धि खतरे में है। यदि विज्ञान और तकनीकी विकास में ही मानव विकास है तो उनका उपयोग योजनाबद्ध विधि से हो। हमें विश्व स्तर पर और समाज के प्रत्येक स्तर पर इस ह्रास और प्रदूषण की ओर ध्यान देकर संहारक सिथति को रोकना होगा।

301/416/3 एफ,
शिवकुटी (पत्थर गली)
इलाहाबाद–4 (उ. प्र.)

लघु कथा

कौन है?

डा. कृष्ण कुमार सिंह

आरा शहर। बिजली गुम। अंधेरी रात। अपना मकान। पति पत्नी। साथ में दो बच्चे। सामने पीपल का पुराना पेड़। दोनों बच्चे गहरी निद्रा में। पति पत्नी सोने की तैयारी में। तब तक ''चलो आते हैं'' की आवाज। पति हैरान। धीमे स्वर में, पत्नी से ''देखो तो कौन है।'' पत्नी पति से साहसी है। ड्राइंग रूम से झांक कर आहट लेती है। कुछ पता नहीं चलता। पति ''जरूर भूत-प्रेत होगा।'' सभी खिड़की दरवाजे बंद कर दो और आओ हम दोनों हनुमान चालीसा का पाठ करते-करते सो जायें, चिरकुट दादा को ही सबसे ज्यादा प्रदूषण से खतरा था क्या? घर के सामने पीपल का पेड़ लगाकर भूत-प्रेत का वास करा दिया। पर्यावरण जाए जहन्नुम में'' पत्नी – ''ऐसा न कहिए। पीपल का पेड़ सदियों से पूजनीय रहा है। इस पर देवी देवता का वास होता है, भूत का नहीं। सबको पीपल का एक-एक पेड़ लगाना चाहिए।''

तब तक फिर आवाज होती है ''आज तुम्हें बता दूंगा।'' पति को और तेजी से पसीना आना शुरू हो जाता है। पत्नी चौकन्नी होकर आगे की आवाज सुनने की कोशिश करती है और आवाजें सुनाई पड़ती हैं। बगल के रूम में जाकर देखती है। टी. वी. खुला हुआ है। कल बैट्री चार्ज कराकर लायी थी। नायक-खलनायक अपना अपना रोल अदा कर रहे हैं। झट से पति देव के पास जाती है और उनका पसीना पोछते हुए मुस्कुराती है –''महाराज! आपका प्रेत पकड़ा गया, चलकर देख लीजिए। कौन है।''

ग्राम-पो., पसौर,
जिला-भोजपुर, 802233
(बिहार)

बैगा आदिवासी और विकास योजनाएं

✍ डा. वीरेन्द्र उनियाल

आदिवासी, यानी जंगलों में रहने वाले लोग, जिनका जीवन पूर्णरूपेण जंगलों पर निर्भर है। आज भी कई आदिवासी अपना जीवन स्तर इन्हीं जंगलों पर कायम किये हुये हैं। लकड़ी का व्यापार, वन्य जीवों का शिकार, वन औषधियों का उपयोग करके कई आदिवासी पूर्व मानव द्वारा शुरू की गई परंपरा को कायम रखे हुए हैं।

भारत के मानचित्र पर अपना विशिष्ट स्थान रखने वाला राज्य मध्यप्रदेश न केवल वनों के लिए प्रसिद्ध है अपितु अनेक आदिवासी जातियों के लिए भी महत्वपूर्ण है। वनों में निवास करने वाले ये लोग जो अपने पूर्वजों से प्राप्त ऐतिहासिक व सांस्कृतिक धरोहर तथा परंपराओं को कायम रखे हुए हैं और उन रीति-रिवाजों के प्रति निष्ठावान हैं।

मध्यप्रदेश का कुल क्षेत्रफल 4,42,841 वर्ग किलोमीटर है जिसमें लगभग 1,55,414 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में वन हैं जो कुल क्षेत्र का 35 प्रतिशत है। इन्हीं वनों में लगभग 46 आदिवासी जातियां निवास करती हैं। यहीं एशिया की सबसे पुरानी जनजाति बैगा तथा अत्यधिक जनसंख्या वाली जनजाति गौड़ भी निवास करती है। ये लोग संस्कृति संपन्न, कलाप्रेमी तथा प्रकृति के अत्यधिक नजदीक रहकर सदियों से अपनी परंपराओं को संजोये हुए हैं।

राज्य का मंडला जिला आज भी हिमालय के बाद वनों तथा जड़ी बूटियों के लिए प्रसिद्ध है। मंडला जिला पूर्णतः आदिवासी जिला है। बैगा तथा गौड़ लोग मूलतः इसी जिले के निवासी हैं, लेकिन अब प्रदेश के अन्य क्षेत्रों में भी जाकर रहने लगे हैं। आदिवासियों की सबसे अधिक संख्या यहां के पर्वतीय क्षेत्र मेकल पर्वत की सुरम्य वनस्थली में सदियों से जीवन-यापन करती आ रही है।

बैगा आदिवासी

प्रदेश की आठ अल्पविकसित प्राचीन जनजातियों में से बैगा भी एक है जो आज भी अपनी आदिम पहचान बनाये हुए जी रही है। बैगा पहाड़ों और जंगलों के वासी हैं। वे हमेशा प्रकृति की गोद में रहते हैं। बैगा कुदरत के खूबसूरत नजारों को नजदीक से निहारते हैं। जंगलों की हरियाली हमेशा उनके पास रहती है। प्रकृति का खुला वातावरण, नदियों, झरनों के स्वरों के साथ जंगलों में नृत्य करते बैगा हमेशा प्रसन्नचित्त रहते हैं।

बैगा एक रहस्यपूर्ण शब्द है। अधिकांश आदिवासी जातियों में बैगा उस व्यक्ति को कहते हैं जो पूरे गांव का रक्षक होता है। वह गांव के पूरे समाज पर नियंत्रण रखता है। वह गांव की भूतप्रेत जैसी विपदाओं से रक्षा तथा गांव के लिए भविष्यवाणी भी करता है। बैगा गांव का चतुर व्यक्ति होता है जो पूरे गांव को आतंकित भी रखता है।

बैगा आदिवासियों का रहन-सहन व खान-पान अत्यंत सादा है। वे सालभर मक्का का पेज पीते हैं तथा कोदो-कुटकी खाते हैं। ये शिकार के भी शौकीन होते हैं। खुशी तथा दुःख के माहौल में महुआ की शराब पीते हैं। इनमें शव को जलाने तथा दफनाने की दोनों प्रथाएं हैं। शमशान नदी की दूसरी तरफ होता है। इनका मानना है कि भटकती आत्मा नदी पार करके गांव में नहीं आ सकती। शव यात्रा खाट पर निकाली जाती है।

बैगा आदिवासियों की महिलाओं में गोदना गुदवाने की प्रथा संसार के समस्त आदिवासियों से अधिक है। शरीर के हर अंग को गोदने से अलंकृत किया जाता है। इनकी मान्यता है कि गोदना नहीं गुदवाने से मरने के बाद भगवान गर्म सलाखों से शरीर को गोदते हैं। गुदवाने के लिए अक्सर दीवाली के दिन शुरूआत करते हैं, इसमें बीजा का रस तथा रमतिला के काजल को सुईयों में डूबाकर शरीर में चुभाते हैं। गुदवाने से आदिवासी महिलाएं गठिया तथा चर्मरोगों से हमेशा के लिए छुटकारा पा जाती हैं।

वर्ष 1982-83 में बैगाओं की कुल आबादी एक लाख बीस हजार थी तथा 1992 के आंकड़ों के आधार पर इनकी आबादी एक लाख 34 हजार हो गयी है। पिछले 10 वर्षों में आबादी में 14 हजार की वृद्धि हुई है।

जीवन की आवश्यक चीजों के उपयोग के लिये ये आदिवासी सहकारी समितियों तथा सरकारी उचित मूल्य की दुकानों पर निर्भर

नहीं रहते, क्योंकि भोजन व्यवस्था से संबंधित फसलें ये लोग स्वयं खेती से प्राप्त कर लेते हैं। वर्षा ऋतु में मक्का, कोंदू, कुटकी, राहर, उड़द, तिली, रमतिला, धान तथा कुछ सब्जियां उगा लेते हैं। इनके सामने जब कभी पैसों की समस्या अपनी खास जरूरत के लिये महसूस होती है तो ये लोग सप्ताह में अपने गांव में आसपास लगने वाले बाजार के दिन उगाये गये अनाज को सस्ते दामों पर शहर से आये हुये व्यापारियों को बेच देते हैं तथा उस पैसे से अपनी जरूरत की चीजें खरीद लेते हैं। जाड़ों में ये लोग चना, गेहूं, राई, तेवड़ा, मसूर, अलसी की फसलें पैदा करते हैं और इन फसलों को दैनिक उपयोग में लाने के बाद जरूरत से अधिक होने पर शहरी व्यापारियों के हाथ सस्ते दामों पर बेच देते हैं। शहरी व्यापारी इन आदिवासियों की मजबूरी का फायदा उठाते हैं।

गर्मियों का मौसम इन आदिवासियों के लिये कष्टदायी होता है, लेकिन इस मौसम में जंगलों में कई ऐसी चीजें प्राप्त होती हैं जिससे इन आदिवासियों की आजीविका भी सुलभ होती है। महुआ के फूलों को बीनकर और उसकी गुली का तेल निकालकर अपने दैनिक उपयोग में लाने के बाद आवश्यकता से अधिक को शहरी व्यापारियों के हाथ बेच देते हैं। इसी तरह गर्मी के मौसम में ही चिरोंजी, तेन्दु पत्ता, खमीर, सगड़ा, भिलमा, धवा, कुल्लू तथा साजा से गोंद निकालकर बेचने का काम करते हैं। ये सब चीजें इन लोगों के लिये ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं हैं। अपने उपयोग में ये लोग इन सब चीजों का ज्यादा उपभोग तो नहीं करते हैं लेकिन इन चीजों के द्वारा अपनी आर्थिक स्थिति के लिये व्यापार के रूप में इनका उपयोग करते हैं। इस तरह से उन्हें न तो किसी सहकारी समिति की आवश्यकता है और न ही किसी ग्रामीण विकास बैंक की।

इनकी कुछ जातियां बांस की टोकरियां एवं अन्य सामान बनाने का काम करती हैं। ये लोग जंगलों से चोरी छुपे बांस काट लेते हैं या फिर वन विभाग से खरीदकर बांस का सामान तैयार करते हैं। इनके द्वारा बनाई गई बांस की विभिन्न प्रकार की टोकरियों को व्यापारी सस्ते दामों पर खरीद लेते हैं। इन लोगों को यहां भी इनकी मजदूरी का पूरा भुगतान नहीं हो पाता है।

बैगा विकास अभिकरण

बैगा आदिवासियों को विलुप्त होते देखकर सन् 1978 में बैगाचैक क्षेत्र में बैगा जनजाति के विकास को लेकर बैगा परियोजना चलाई गयी। मण्डला जिले के 16 विकास खंडों में यह परियोजना कार्यरत है। बैगा विकास अभिकरण का मुख्यालय मंडला जिले की डिंडोरी तहसील में है। अभी तक 11 करोड़ रुपये इस विकास अभिकरण के तहत खर्च किये जा चुके हैं। इनमें पेयजल, सड़क, स्कूल तथा अन्य आवश्यक निर्माण कार्य किया गया है। इसके साथ ही खेती की उपयोगिता के महत्व को लेकर बैगाओं को अनुदान भी दिया जाता है। इसमें खाद, उन्नत बीज कृषि औजार, भूमि में सुधार आदि की चीजें शामिल हैं। कृषि को बढ़ावा देने के लिए विशेष अनुदान शामिल हैं। स्कूली शिक्षा के लिए छात्रवृत्ति, निःशुल्क छात्रावास तथा भोजन की व्यवस्था भी विकास अभिकरण की योजना के तहत है।

आजकल मध्य प्रदेश के पांच जिलों के 1262 ग्रामों में बैगा विकास परियोजना कार्यरत है। इनमें मंडला के साथ शहडोल, राजनांदगांव, बिलासपुर तथा बालाघाट जिले भी शामिल हैं। इन क्षेत्रों में यातायात सुविधा का ध्यान रखा गया है जिससे कि बैगा लोग परियोजना के दफ्तर तक आने लगे हैं। अभी तक मंडला जिले में 204 दसवीं पास बैगा छात्रों को शिक्षक बनाया गया है।

एम. आई. जी. - 179,
धनवंतरी नगर,
जबलपुर (म. प्र.)

कुरुक्षेत्र मंगाने का पता:
व्यापार व्यवस्थापक
प्रकाशन विभाग
पटियाला हाऊस
नई दिल्ली-110001
एक प्रति : तीन रुपये वार्षिक चंदा : 30 रुपये

ग्रामीण विकास में कृषि विपणन का महत्व

✍ निशीथ शर्मा

भारत एक कृषि प्रधान देश है। देश की अर्थव्यवस्था कृषि पर ही निर्भर है। कृषि की उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि कृषिगत पदार्थों की बिक्री का पूर्ण लाभ केवल उन्हें ही प्राप्त हो जो उसके हकदार हैं। इसके लिए जरूरत है सही कृषि नीति की। कृषि विकास की कोई भी नीति कितनी भी अच्छी क्यों न हो, वह कृषि विपणन की कुशल व्यवस्था के बिना कृषि उत्पादन बढ़ाने में सहायक नहीं हो सकती।

कृषि से खाद्यान्न फल, सब्जियां तथा उद्योगों के लिए कच्चा माल आदि बाजार में बिक्री के लिए आता है। कृषिगत पदार्थों के खरीदारों और कृषकों के बीच विभिन्न स्तरों पर दलाल, आढ़तिए और बिचौलिए होते हैं। इससे उपभोक्ताओं एवं औद्योगिक कच्चे माल के क्रेताओं एवं कृषकों के हितों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अतः विपणन प्रणाली इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे उपभोक्ताओं एवं कृषि पदार्थों के क्रेताओं को, उचित मूल्य पर, कृषि वस्तुएं उपलब्ध हो सकें और उनका शोषण न हो पाए।

कृषि विपणन में कृषि पदार्थों का एकत्रीकरण, उनका श्रेणीकरण, नाप तौल, भण्डारण सुविधाएं, यातायात का प्रबंध, साख की उपलब्धि, बिक्री की पद्धति, बिक्री के स्थान का प्रबंध, सरकार द्वारा कृषि फसलों की खरीदारी आदि आर्थिक कार्यकलाप शामिल हैं। एक अच्छी एवं विकसित कृषि विपणन प्रणाली में मध्यस्थों का अभाव, संगठित बाजार, परिवहन और भण्डारण सुविधाओं की उपलब्धि, किसानों और उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा, उत्पादन स्थल के निकट ही विक्रय केन्द्रों की उपलब्धि, सहकारी विपणन समितियां आदि उपलब्ध होनी चाहिए।

भारत में कृषि विपणन व्यवस्था में अनेक खामियां हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में फसलों को खरीदने के लिए अनेक प्रकार के बिचौलिए होते हैं। किसानों में फसलों को बेचने के लिए प्रतियोगिता होती है जिसका लाभ ये बिचौलिये उठाते हैं। इससे किसानों को फसलों का उचित मूल्य प्राप्त नहीं होता। यह समस्या विशेष रूप से छोटे किसानों के सम्मुख अधिक आती हैं।

थोक बाजार एवं मंडियों में किसानों को अनेक प्रकार से ठगने का प्रयत्न किया जाता है, उदाहरणार्थ बाट और तौल में गड़बड़ी, धर्मार्थ कार्य आदि के नाम पर मनमानी कटौती, नमूने के रूप में बहुत सारा माल ले लेना, पल्लेदारी, तुलाई और ढुलाई आदि से संबंधित कटौती आदि। इससे कृषकों को आर्थिक हानि उठानी पड़ती है।

प्रायः कृषकों को कटाई के तुरन्त पश्चात फसलों को बेचना जरूरी हो जाता है क्योंकि किसान को महाजनों, साहूकारों, व्यापारियों आदि से लिया ऋण चुकाना होता है। इसके अतिरिक्त गोदामों की कमी, यातायात सुविधा की समस्या आदि के कारण भी किसानों को फसल शीघ्र बेचनी पड़ जाती है। किसानों के पास कृषि पदार्थों के भंडारण हेतु पर्याप्त सुविधाएं नहीं होतीं। इससे फसल का चूहों, कीड़ों आदि से नष्ट होने का भय बना रहता है। इस कारण किसानों की उपज का उचित मूल्य नहीं मिलता।

किसानों को कृषि फसलों की चालू कीमतों की जानकारी भी नहीं होती। यह समस्या विशेष रूप से पिछड़े एवं अविकसित क्षेत्रों में अधिक है। इस ज्ञान के अभाव में जो भी कीमत मिलती है, उस पर ही किसान अपने कृषि पदार्थों को बेचने पर तैयार हो जाता है। आज भी अनेक राज्यों में सहकारी संगठनों की कमी है। सहकारी विपणन समितियों, सहकारी साख समितियों आदि की कमी विशेष रूप से उत्तर भारत के अनेक राज्यों में दिखाई देती है। इसका परिणाम यह होता है कि गरीब किसानों को सहकारी संगठनों का पूरा लाभ नहीं मिल पाता।

कृषि पदार्थों का उचित मूल्य प्राप्त हो सके, इसके लिए श्रेणीकरण एवं प्रमाणीकरण आवश्यक है। एक प्रकार की फसल को गुणों के आधार पर श्रेणीबद्ध करके उचित कीमतें प्राप्त करने में मदद मिलती है। प्रमाणीकरण से फसलों के गुण आदि के बारे में निश्चिंतता हो जाती है। श्रेणीकरण और प्रमाणीकरण की पर्याप्त सुविधाएं गांवों में उपलब्ध नहीं हैं।

किसानों को कृषि पदार्थों का उचित मूल्य प्राप्त हो सके, इसके लिए विभिन्न योजनाओं द्वारा प्रयत्न किए गए हैं। राज्य सरकारों ने अपने राज्यों में बाजारों को नियंत्रित करने हेतु कुछ अधिनियम भी बनाए हैं। केन्द्र सरकार ने भी अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। इनमें से कुछ हैं:— कृषि उपज मंडियों को नियमित करना, कृषि उपज (श्रेणीकरण व चिह्नीकरण) अधिनियम 1937 के अंतर्गत कृषि व संबद्ध जिन्सों का वर्गीकरण तथा मानकीकरण, शीत भंडार आदेश को लागू करना, कृषि उपज मंडियों का विकास करना, इन मंडियों में मूल सुविधाएं जुटाने में सहायता करना,

ग्रामीण गोदाम बनाने में सहायता करना, मंडी अनुसंधान व नियोजन तथा कर्मचारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना आदि।

श्रेणीकरण व चिह्नीकरण अधिनियम, 1937 के अंतर्गत विपणन व निरीक्षण निदेशालय में 142 जिन्सों के मानक तैयार किए गए हैं जिसके अंतर्गत प्रमाणीकृत उत्पादों के लिए 'एगमार्क' चिन्ह का प्रयोग किया जाता है। चुनी हुई मंडियों में बुनियादी ढांचा विकसित करने में केन्द्रीय सहायता उपलब्ध कराने की एक योजना 1972-73 से चल रही है। विपणन निरीक्षण निदेशालय के कपास वर्गीकरण के छह केन्द्र है जिनसे सहकारी समितियों और उत्पादकों को कपास की किस्म के अनुरूप कीमत मिलने में सहायता मिलती है। फसलों के विपणन से संबंधित विभिन्न संस्थाओं में जो कर्मचारी कार्यरत हैं, उनके प्रशिक्षण के लिए सरकार ने विशेष व्यवस्था की है। ये कार्यक्रम विपणन और प्रशिक्षण निदेशालय द्वारा चलाए जाते हैं। ग्रामीण गोदाम बनाने की योजना को किसानों, विशेषकर छोटे व सीमान्त किसानों की भण्डार आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर चलाया जा रहा है। इस योजना के प्रमुख उद्देश्य हैं : फसल के बाद अनाज व अन्य कृषि उत्पादों की कम कीमत पर बिक्री को रोकना और घटिया गोदामों में भण्डारण के कारण अनाज की मात्रा तथा गुणवत्ता के ह्रास को रोकना।

बाजारों में विभिन्न कृषि फसलों की जो कीमतें हैं उसके बारे में सही सूचनाएं मिलने से किसान अपनी उपज का उचित मूल्य प्राप्त करने के लिए प्रयत्न कर सकते हैं। वर्तमान में रेडियो, टेलीविजन एवं समाचार पत्र, वृत्तचित्र स्लाइड, मुद्रित सामग्री, प्रदर्शनी के माध्यम से विभिन्न फसलों की कीमतों के बारे में किसानों को सूचना दी जाती है। भारतीय खाद्य निगम भारत की एक प्रमुख संस्था है। यह निगम न केवल खाद्यान्नों को सरकार द्वारा घोषित मूल्य पर खरीदता है, वरन् उनके संग्रह एवं वितरण से संबंधित कार्य भी करता है।

विपणन समस्याओं के अध्ययन हेतु सर्वेक्षण एवं अनुसंधान कार्यों का विशेष महत्व है। इनसे विपणन व्यवस्था की कमियां ज्ञात होती है एवं उन कमियों को दूर करने के लिए राज्य तथा केन्द्रीय स्तर पर सही नीतियां निर्धारित करने में मदद मिलती है। सहकारी विपणन, विपणन समस्या के समाधान का एक प्रभावशाली तरीका है। सहकारी विपणन के अंतर्गत प्राथमिक सहकारी बिक्री समितियां, राज्य बिक्री समितियां एवं केन्द्रीय बिक्री समितियां कार्य कर रही हैं। इस प्रकार की अनेक योजनाओं के माध्यम से कृषि विपणन व्यवस्था को सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए विभिन्न स्तरों पर प्रयास किए जा रहे हैं। भारत में कृषि उत्पादन के आकार को देखते हुए इस दिशा में और अधिक कदम उठाए जाने की आवश्यकता है।

भारत की अधिकांश आबादी गांवों में बसती है और उनका मुख्य व्यवसाय कृषि है। यदि उन्हें कृषि विपणन की सुदृढ़ व्यवस्था प्राप्त हो तो वे अपनी उपज और अपनी मेहनत का पूर्ण लाभ उठा सकेंगे। जब उनकी आजीविका चलाने में कृषि एक सशक्त माध्यम बनी रहेगी तो वे गांव में ही रहना पसंद करेंगे और उनका शहरों की ओर पलायन रुकेगा। अतः यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि ग्रामीण विकास में कृषि विपणन की महत्वपूर्ण भूमिका है।

53 एल, बंगला साहिब रोड, नई दिल्ली–110001

(पृष्ठ 13 का शेष)

4. वायुमण्डल में कार्बन की मात्रा छोड़ने पर कर लगाया जाना चाहिए। स्वीडन ऐसा कर रहा है।
5. देशों का कार्बन बजट निश्चित कर दिया जाए।
6. उद्योगों के लिए पर्यावरणीय दृष्टि से उपयुक्त तकनीक का विकास किया जाना चाहिए।
7. गर्मी बढ़ाने वाली गैसों का उपयोग कम से कम किया जाये। 'पृथ्वी सम्मेलन' में सन् 2000 तक ऐसी गैसों का 20 प्रतिशत उपयोग कम करने का लक्ष्य रखा गया है।
8. विकसित देश अपनी अर्थ-व्यवस्था व जीवन शैली में बदलाव लाए।
9. वनों की कटाई रोकी जाए।
10. धान की कृषि को मीथेन से मुक्ति के प्रयास किये जायें।
11. कारखानों में रखरखाव के चुस्त उपायों से कार्बन उत्सर्जन को 20 प्रतिशत घटाया जा सकता है।
12. कारखानों की भट्ठियों को ढकने की उपयुक्त व्यवस्था की जाए।
13. मोटर गाड़ियों के इंजन को बराबर ठीक रखा जाये। ज्यादा कार्बन छोड़ने वाले वाहनों पर दण्ड लगाया जाए।
14. विद्युत क्षय को कम करने का प्रयास किया जाए।
15. गैस ईंधन को उपयोग में स्थान दिया जाये।
16. वायु और सौर ऊर्जा को काम में लाने के गम्भीर प्रयास किये जाएं।
17. एअर कण्डीशनर व रेफ्रिजरेटरों में सी. एफ. सी. का विकल्प प्रयोग में लाया जाए।

प्रवक्ता भूगोल दुर्गानारायण महाविद्यालय,
फतेहगढ़ (उ. प्र)– 209601

पर्यावरण पर अतिचारण के खतरे

✍ कौशल किशोर चतुर्वेदी

मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु तथा विकास के नाम पर प्रगति की अन्धी-दौड़ में शामिल होने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का निर्ममतापूर्वक दोहन किया है जिससे इकोसिस्टम (पारिस्थितिकी तंत्र) पर दबाव निरन्तर बढ़ता जा रहा है। चाहे वह आवास-समस्या को हल करने की दिशा में कृषि-योग्य भूमि के अधिकाधिक प्रयोग से हो, बढ़ती हुई नगरीकरण की प्रवृत्ति से सड़कों के किनारे के बाग बगीचों को काटकर बड़े-बड़े भवनों के निर्माण से हो, विशालकाय बांधों के निर्माण तथा बड़ी-बड़ी औद्योगिक इकाइयों की स्थापना तथा विस्तार के लिए घने जंगलों के विस्तृत क्षेत्र के सफाये से हो या पृथ्वी के गर्भ में छिपे खनिजों की प्राप्ति के लिए मनमाने ढंग से किया जाने वाला उत्खनन कार्य हो या फिर तथाकथित पर्यावरणीय शुद्धता के लिए गांवों के आसपास की खाली पड़ी जमीन पर परदेशी प्रजातियों के अधिक वृक्षारोपण से हो। इन सब मानवीय कारगुजारियों से जहां कृषि योग्य भूमि कम हुई है, घने जंगलों का विनाश हुआ है वहीं किसी जमाने में खाली पड़ी संरक्षित जमीन जिसे चरागाह के रूप में उपयोग किया जाता था, का क्षरण हुआ है। इन सबका प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष प्रभाव हमारी मानवता के अतिरिक्त पशु-पक्षियों, कीड़े-मकोड़ों, जीव-जन्तुओं, वनस्पतियों तथा हमारे पालतू पशुओं पर पड़ा है। इन सबके परिणाम के रूप में आज हमारे पशु-समुदाय के लिए चारे की एक प्रमुख समस्या सबके सामने है।

एक अनुमान के अनुसार हमारे देश में चारे पर आश्रित रहने वाले जानवरों की कुल संख्या 46.5 करोड़ के आसपास है, जिनके लिए 105 करोड़ टन चारे की आवश्यकता पड़ती है। किन्तु सभी स्रोतों से लगभग 55 करोड़ टन चारे की आपूर्ति ही हो पाती है जिसमें हरी घास तथा खर-पतवार के रूप में 18 करोड़ टन, पेड़-पौधों की पत्तियों के रूप में 1.2 करोड़ टन, हरे चारे की फसल के रूप में 6.3 करोड़ टन तथा अनाज की फसलों के अवशेष के रूप में 29.5 करोड़ टन चारा उपलब्ध होता है। देश में चारे की कुल कमी का लगभग 35 प्रतिशत हमारे मैदानी क्षेत्रों में है, जबकि पर्वतीय क्षेत्रों खास तौर से उत्तरी-पूर्वी राज्यों, अण्डमान-निकोबार द्वीप समूह, केरल, लक्षद्वीप, असम, मध्य-प्रदेश तथा उत्तर-प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों में यह स्थिति थोड़ी बेहतर है, जहां की धरती पर लगभग 55 प्रतिशत वन अब भी मौजूद हैं।

चरागाहों तथा वनों के विस्तार में निरन्तर होती कमी तथा फसलों द्वारा प्राप्त चारे की पर्याप्त आपूर्ति न हो सकने के कारण चारे की कमी बराबर बनी हुई है। ऐसा भी नहीं हो सकता कि केवल चारे की ही फसल उगायी जाए जिससे चारे की आपूर्ति की दिशा में कुछ सुधार हो, आखिर पेट-पालने के लिए मनुष्य को फसलें तो उगानी ही हैं। वैसे भी मशीनीकरण के इस युग में खेती के प्रति लोगों का रुझान कम हुआ है। लोग खेती को छोड़कर शहरों की तरफ अधिक भागने लग गये हैं। फिर भी जानवरों को खाने के लिए कुछ तो चाहिए ही। ऐसे में जो थोड़े से संसाधन मौजूद हैं उसी में ये बेचारे किसी तरह अपना गुजर-बसर कर रहे हैं। संसाधनों की कमी से उत्पन्न अतिचारण (ओवर ग्रेजिंग) की समस्या एक पर्यावरणीय त्रासदी के रूप में आज सभी के सामने है।

अतिचारण का तात्पर्य

अतिचारण यानी ओवर ग्रेजिंग का तात्पर्य पालतू तथा जंगली जानवरों द्वारा हरी घासों, खर-पतवारों, वृक्षों तथा झाड़ियों की पत्तियों तथा मुलायम टहनियों या फिर सम्पूर्ण शाकीय पौधे को चारे के लिए लगातार प्रयोग करते रहने से है। इसमें जानवरों द्वारा स्वतन्त्र रूप से अनियन्त्रित चारण होता है। इससे पादप-सम्पदा को हानि तो होती है साथ ही साथ ढेरों सारे पर्यावरणीय खतरे भी पैदा हो जाते हैं।

अतिचारण के कारण

अतिचारण के लिए उत्तरदायी कारण हैं:

चारे की पूर्ण आपूर्ति का न हो पाना, घास के मैदानों (चरागाहों) का निरन्तर कम होना, वृक्षों की अन्धा-धुंध कटाई तथा वनों का सफाया, जानवरों की संख्या में बढ़ोत्तरी, कृषि कार्य के प्रति लोगों की बढ़ती उदासीनता तथा कृषि-योग्य भूमि के विस्तार में कमी। कई जानवर कुछ चुने हुए स्वादिष्ट पौधों तथा उनके मुलायम भागों को ही खाते हैं जिससे इन पौधों को विशेष नुकसान

पहुंचता है और ये नष्ट होने लगते हैं। कुछ समय बाद इनके स्थान पर हानिकारक पौधे उगने शुरू हो जाते हैं। उदाहरण के लिए कैरट-वीड जिसे वनस्पति विज्ञान की भाषा में **पार्थीनियम** कहा जाता है ऐसा ही हानिकारक खर-पतवार है जिसकी चरागाहों, जंगलों या अन्य खाली स्थानों में भरमार है। यह वनस्पति मनुष्य तथा पशुओं में रोगों को जन्म देता है तथा प्रतिस्पर्धा में आसपास की अन्य वनस्पतियों से आगे निकलकर उन्हें नष्ट कर डालती है।

पशुओं की बढ़ती हुई संख्या तथा परम्परागत चारे की पूर्ण आपूर्ति सुनिश्चित न हो पाने से इधर पशुओं की निर्भरता जंगली पौधों पर अधिक बढ़ी है। आज हालत यह है कि जिन पशुओं को हरी-भरी कुतरी हुई मुलायम घास तथा भूसा और अनाज का दाना खाने को मिलना चाहिए वे बेचारे भी जंगली पौधे चाहे वे हानिप्रद हों या लाभप्रद, खाने के लिए मजबूर हैं। ऐसे में इन बेचारों के लिए पौष्टिकता का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, जिससे इनके स्वास्थ्य में गिरावट आती है तथा इनके उत्पादों दूध, दही की गुणवत्ता में भी कमी आ जाती है।

पर्यावरण पर अतिचारण के खतरे

पर्यावरण कई जैविक तथा भौतिक कारकों से प्रभावित होता है। अतिचारण एक ऐसा ही जैविक कारक है जो पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। पालतू पशुओं, भेड़ों, बकरियों, सांभर, नीलगाय, हिरन, खरगोश आदि के चारण द्वारा तथा ऊंट, हाथी, जिराफ द्वारा वृक्षों की पत्तियों तथा टहनियों को लगातार कुतरते रहने से वनस्पति को बहुत नुकसान पहुंचता है। इसका प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष प्रभाव सम्पूर्ण पर्यावरण पर पड़ता है।

अतिचारण द्वारा पर्यावरण को होने वाले खतरे निम्नलिखित हैं:

1. पौधे की खाना बनाने (कार्बोहाइड्रेट निर्माण) वाली मशीनरी उसकी पत्तियां होती हैं जिससे कि पौधा जीवित रहता है। अतिचारण द्वारा पत्तियों के नष्ट हो जाने से पौधा कार्बोहाइड्रेट का निर्माण करने में असमर्थ हो जाता है जिससे कुछ समय बाद पौधे की अस्वाभाविक मृत्यु हो जाती है।
2. बहुत से कमजोर शाकीय पौधे जानवरों के पैरों (खुरों) के नीचे दबकर अपना अस्तित्व हमेशा के लिए खो बैठते हैं। विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहां झुण्ड के झुण्ड जानवर चरने के लिए निकलते हैं।
3. चूंकि अतिचारण द्वारा जमीन का हरित-आवरण धीरे-धीरे नष्ट होने लगता है इसलिए जमीन अनुपजाऊ होकर बंजर के रूप में परिवर्तित हो जाती है।
4. अतिचारण से वनस्पति-विहीन धरती रेगिस्तान के फैलाव में वृद्धि करती है। पर्यावरणविद् मर्फी (1951) का मानना है कि भेड़-बकरियों, गाय-भैंसों, ऊंटों आदि के अनियन्त्रित स्वतन्त्र चारण का ही परिणाम विश्व का सबसे बड़ा सहारा रेगिस्तान है। वैज्ञानिक कास्सास (1956) ने अपने प्रयोगों द्वारा यह दिखाया है कि सहारा रेगिस्तान के उस क्षेत्र में जहां जानवरों के आवागमन तथा उनके चरने पर पूर्ण प्रतिबन्ध था वहा वनस्पतियां उगी मिलीं, जबकि चरने वाला स्थान पूर्णतया वनस्पति-विहीन था। राजस्थान के मरुस्थल के विस्तार में अतिचारण भी एक जैविक कारक रहा है जो धीरे-धीरे पंजाब तथा दिल्ली की ओर बढ़ रहा है।
5. इसके पादप-संगठन में परिवर्तन होने लगता है। वृक्षों की जगह झाड़ियां, झाड़ियों की जगह खर-पतवार तथा घासें उगने लगती हैं। अन्त में घासों की जगह नग्न धरती ही रह जाती है। वैज्ञानिकों का मानना है कि भारत में बांस के जंगलों के कम होने में अतिचारण की भी भूमिका रही है।
6. अतिचारण द्वारा पौधे फिर से विकसित नहीं हो पाते जिससे कई बार सदैव के लिए नष्ट हो जाते हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार बांस, साल तथा सागौन नामक वृक्षों में पुनर्विकास की क्रिया बहुत धीमी होती है। बार-बार चरते रहने से ये खत्म भी हो जाते हैं।
7. अत्यधिक चारण से विकसित नग्न धरती के अन्दर का तापक्रम बढ़ने लगता है।
8. वृक्षों, झाड़ियों तथा घासों और खर-पतवारों पर सहजीवन व्यतीत करने वाले लाइकेन तथा अधिपादप भी नष्ट हो जाते हैं।
9. छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़ों, चूहे, खरगोश तथा वन्य-जीवों का वास-स्थान छिन जाता है तथा पक्षियों के रैन-बसेरे उजड़ जाते हैं।
10. हानिकारक वनस्पतियों को भूखे जानवरों द्वारा खा लेने से इनमें रोग फैलने की आशंका होती है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवरण से स्पष्ट है कि पृथ्वी का हरित-आवरण, जिसे ग्रीन-गोल्ड कहा जाता है, को नष्ट करने में अतिचारण एक महत्वपूर्ण जैविक कारक रहा है जिसके प्रभाव के

रूप में भू-स्खलन, बाढ़, सूखा, प्रदूषण, तापमान में वृद्धि जैसी पर्यावरणीय विपदाओं का जन्म होता है। पर्यावरण के जैविक और भौतिक घटकों के बीच सामंजस्य बिगड़ जाने से पर्यावरणीय असन्तुलन की स्थिति पैदा हो जाती है। पक्षियों के रैन-बसेरे उजड़ जाते हैं, उन्हें खाने को स्वादिष्ट फल नहीं मिल पाते। कीड़े-मंकोड़े तथा वन्य-जीवों का आश्रय-स्थल छिन जाता है, इनके भोजन के लिए शिकार मिलना मुश्किल हो जाता है। स्वयं मनुष्य को दो जून की रोटी सेकने के लिए ईंधन की कमी होने लगती है। विभिन्न उद्योगों के लिए कच्चे माल की पूर्ण रूप से आपूर्ति न हो पाने के कारण इनके बन्द हो जाने की नौबत आ जाती है। न जाने कितनी जड़ी-बूटियां, कन्द मूल तथा औषधीय पौधे खत्म हो जाते हैं जो मानव के लिए वरदान साबित हुए हैं, विशेष रूप से जंगलों में निवास करने वाली आदिम-जातियों के लिए जिनका सर्वस्व उनके चारे के हरे-भरे पेड़-पौधे ही होते हैं। इनके लिए न कोई दवाखाना होता है, न कोई डिस्पेन्सरी। ये लोग जंगली जड़ी-बूटियों द्वारा बड़ी से बड़ी बीमारियों का स्वतः इलाज करते हैं तथा अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पूर्णतया वनस्पतियों तथा जंगली जानवरों पर ही आश्रित रहते हैं। मकान बनाने तथा जलाने के लिए लकड़ी, खाने के लिए कन्द मूल तथा फल-फूल तथा अन्य उपयोगी उत्पाद वनस्पतियों से ही प्राप्त करते हैं। इतना ही नहीं, तथाकथित सभ्य कहे जाने वाले मानव समाज के लिए विकसित आधुनिक औषधियों से सम्बन्धित औषधीय पौधों का प्रारम्भिक ज्ञान आदिम-जातियों से ही प्राप्त हुआ है। उदाहरण के लिए **सर्पगन्धा** के औषधीय महत्व की जानकारी जन-जातियों द्वारा ही प्राप्त हुई है जिसे आज उच्च रक्त-चाप को कम करने के लिए प्रयोग किया जाता है। दुर्भाग्य है कि आज यह पौधा भारत के जंगलों में अपने अस्तित्व के लिए संकट झेल रहा है। अतिचारण के प्रभाव से कई जन्तु तथा वनस्पति प्रजातियां विलुप्त हुई हैं, कई लुप्त होने के कगार पर हैं तथा कुछ पर्यावरणीय परिस्थितियों से अनुकूलन करने के लिए जूझ रही हैं। यदि परिस्थितियां एक लम्बे समय तक प्रतिकूल रहीं तो ये भी अपना अस्तित्व सदैव के लिए खो देंगी। अतिचारण से पर्यावरण के सभी घटक प्रभावित होते हैं जिनमें स्वयं मनुष्य भी शामिल है।

अतिचारण रोकने के उपाय

पर्यावरण में अतिचारण के प्रभाव को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। इससे हम सभी जीव-जन्तुओं का जीवन बुरी तरह प्रभावित है। इसे रोकने के लिए प्रभावी कदम उठाने की आवश्यकता है। इसके लिए निम्नलिखित कदम उठाने होंगे:

1. अप्रतिबन्धित, अनियन्त्रित स्वतन्त्र-चारण पर पूरी तरह रोक लगानी चाहिए।
2. चारे के लिए हरी फसल अधिक से अधिक उगानी चाहिए।
3. जानवरों की बढ़ती संख्या पर रोक लगानी होगी।
4. ऐसी फसलें बोनी चाहिए जो अनाज के साथ भूसे का भी अधिक उत्पादन कर सकें।
5. घास के मैदानों, चरागाहों को संरक्षण प्रदान करना चाहिए।
6. ऐसे वृक्ष लगाने चाहिए जिनकी पत्तियां तथा मुलायम टहनियां हरे चारे के रूप में प्रयोग की जा सकें।
7. वनों के वानस्पतिक-संगठन के अनुरूप सरकार को एक 'चारण-नीति' बनानी चाहिए, जैसे 'राष्ट्रीय वन-नीति'' 1988 बनी है जिसमें रोटेशनल-ग्रेजिंग की व्यवस्था हो।
8. चारे की आपूर्ति तथा गुणवत्ता में सुधार हेतु अनुसन्धान तथा विकास कार्य का प्रोत्साहन देना चाहिए। इन्डियन फॉडर रिसर्च इंस्टीट्यूट झांसी (उ. प्र.) तथा कुछ कृषि-विश्वविद्यालय इस कार्य में लगे हैं।
9. पशुओं, जानवरों की देख-रेख में वैज्ञानिक तरीकों का अधिक से अधिक इस्तेमाल करना चाहिए।
10. अन्त में चारे की बर्बादी रोकनी चाहिए। चारा उतना ही कीमती है जितना हमारे लिए अनाज।

निष्कर्ष

अतिचारण द्वारा उत्पन्न की गयी पर्यावरणीय विपदायें हल करने के लिए सभी को एकजुट होकर अपने-अपने स्तर से प्रयास करना चाहिए। प्राकृतिक नियमों, पर्यावरणीय कानूनों तथा नीतियों के अनुरूप कार्य करते हुए मनुष्य को पर्यावरण की रक्षा करनी चाहिए जिससे पारिस्थितिकी-तन्त्र में सभी का अस्तित्व बना रहे सके, अन्यथा पर्यावरण की मार झेलते-झेलते जीव-जन्तु स्वतः ही समाप्त हो जायेंगे।

टी-5/3, टी. वी. कालोनी,
तेलियरगंज,
इलाहाबाद–211004 (उ.प्र.)

वनरोपण : विशेष कार्यक्रम

आठवीं पंचवर्षीय योजना में वानिकी क्षेत्र के लिए 40 अरब 82 करोड़ रुपये आबंटित किए गए हैं जो कुल योजना राशि का लगभग एक प्रतिशत है। यह धन वनरोपण तथा भूमि संरक्षण और वन्य प्राणी सुरक्षा जैसी गतिविधियों के लिए उपलब्ध कराया गया है। कृषि तथा ग्रामीण विकास मंत्रालयों द्वारा विशेष क्षेत्र विकास कार्यक्रम और सूखोन्मुख क्षेत्र कार्यक्रम (डी. पी. ए. पी.) तथा मरुस्थल विकास कार्यक्रम जैसी स्कीमों के माध्यम से भी राज्य सरकारों को कोष उपलब्ध कराये गये हैं।

यद्यपि इन विशेष कार्यक्रमों में पर्यावरण में सुधार से संबद्ध अनेक पहलुओं को शामिल किया गया है तथापि वनरोपण और वृक्षारोपण कार्यक्रम मुख्य आधार बने रहेंगे। जलावन की लकड़ी, चारा और बायोमास के लिए बड़े पैमाने पर वनों के दोहन के फलस्वरूप इन कार्यक्रमों का महत्व बढ़ गया है। इन कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय वन नीति 1988 के अनुरूप वन क्षेत्र का विस्तार करना है।

डी. पी. ए. पी. योजना ऊसर तथा अर्द्ध ऊसर क्षेत्र में आने वाले सभी 13 राज्यों में चलायी जा रही है। इसके अंतर्गत 92 जिलों के 615 प्रमुख प्रखंड आते हैं जिनकी कुल जनसंख्या 7 करोड़ 7 लाख है। मरुस्थल विकास कार्यक्रम की विशेष योजनाएं गुजरात, राजस्थान तथा हरियाणा के उष्ण मरुभूमि क्षेत्रों के साथ-साथ जम्मू और कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश के शीत मरुभूमि इलाकों में भी चलाई जा रही है। ये इन राज्यों के 21 जिलों के 131 प्रखंडों में चलाई जा रही है।

दोनों कार्यक्रम कई वर्षों से चलाए जा रहे हैं। डी. पी. ए. पी. पर खर्च केंद्र सरकार और संबद्ध 13 राज्य बराबर-बराबर वहन करते हैं। डी. डी. पी. के लिए केंद्र से शत प्रतिशत सहायता मिलती है। डी. डी. पी. के अंतर्गत प्रति 1000 वर्ग किलोमीटर के लिए 24 लाख रुपये की दर से राशि आबंटित की जाती है। शीत मरुक्षेत्रों के लिए हिमाचल प्रदेश में प्रति जिला लगभग एक करोड़ रुपये और जम्मू कश्मीर में प्रति जिला एक करोड़ 50 लाख रुपये उपलब्ध कराये गये हैं। योजना आयोग के कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन ने इन कार्यक्रमों की सराहना की है।

साभार : पत्र सूचना कार्यालय

RN 708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : (डी (डी एल) 12057/94
पूर्व भुगतान के बिना डी. पी. एस. ओ. दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

P & T Regd. No. D •(DL) 12057/94
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at DPSO, Delhi-54

देशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली - 110001 द्वारा प्रकाशित और आकाशदीप प्रिन्टर्स, नई दिल्ली - 110002 द्वारा मुद्रित